

वर्ष ३ अङ्क १०

श्रावण सं० २०२०

अगस्त १९६३

# परमानन्द संदेश

सचित्र आध्यात्मिक, धार्मिक मासिक

सस्थापक

श्री १०८सद्गुरु बाबा शारदाराम मुनिजी महाराज, श्रीतीर्थ रामटेकड़ी, पूना ।

सम्मान्य संरक्षक

महामण्डलेश्वर श्री स्वामी गंगेश्वरानन्दजी महाराज

संचालक

श्री अजित मेहता [ बी० ई० सिविल ]

सम्पादक—

आचार्य भद्रसेन

साधारण सदस्यों के लिये शुल्क

५) पांच रुपए वार्षिक

स्थायी सदस्यों के लिए

२५) पच्चीस रुपए ६ वर्षों तक

आजीवन सदस्यों के लिए

१५१) एक सौ इक्यावन रुपये

—\*—

साधारण अंकोंका मूल्य—५० नये पैसे

पत्र-व्यवहार का पता :—

शारदा प्रतिष्ठान

सी० के० १५।५१ मुड़िया, बुलानाला

वाराणसी—१

## अनुक्रमणिका

लेख—

पृष्ठ

१—

२—मत भोग में आसक्त हो (पद्य) ३

३—भगवान महावीर और उनका उपदेश ५

४—बाबाजी का प्रवचन ९

५—हंस अकेले ही रहो (पद्य) १२

६—साधना के मूल सिद्धान्त तथा  
त्रिपरीत बुद्धि १३

७—अरविन्द के वचनामृत १८

८—मानस सरस्वती २०

९—मानव की क्या पहिचान हैं २३

१०—संसार से शिछा (पद्य) २४

११—धर्म का लक्ष्य सच्चा ज्ञान २५

१२—तुलसी की अमर बाणी (पद्य) २६

१३—श्री भिक्षु स्वामी के अनमोल वचन २७

१४—ब्रह्म तरंग २८

१५—भगवद्भजन के सच्चे अधिकारी २९

१६—जीवन पहेली ३४

१७—ब्रह्म सत्या जगन्मिथ्या ३७



## एक आर्त भक्त की करुण पुकार



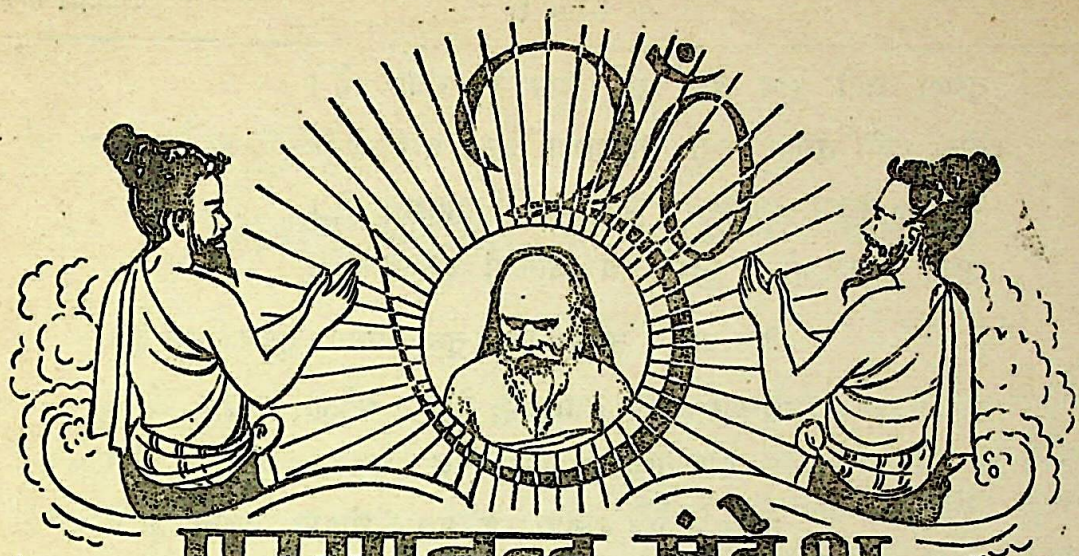
विशाल मालासे हृदय अति ही शोभन बना । नई नीलके अद्युति हर रही कांति वपु की ।  
 बनश्री ही मानो हृदयधनसे है मिल रही ॥ प्रभातश्री सी है विलसित छटा पीत पट में ॥  
 स्मिताभा फैली है मधुर अधरोंमें मन हरी । सुकेशों पै बांका मुकुट धनमें इन्द्रधनु स ॥  
 मनोक्षा वन्शीको ध्वनि कर रही स्नेह जिससे ॥ करोंमें वन्शी है मनसिज सखी मूर्त रति की ॥



तुम कहाँ छिपे भगवान् हो, मधुसूदन हो मोहन हो ॥ १ ॥  
 तुम छिपे क्षीर सागरमें, या गोपिन की गागर में ।  
 या किसी दीनके घरमें, या द्रुपद सुता अम्बर में ॥  
 हे सतचित् आनन्द धन हो, मधुसूदन हो मोहन हो ॥ २ ॥  
 प्रभु रहते वृन्दावनमें, या बसते गोवर्धन में ।  
 या हो तुम नन्द भवन में, या श्री राधाके मन में ॥  
 कहँ खोजूँ रमारमण हो, मधुसूदन हो मोहन हो ॥ ३ ॥  
 हे नाथ कहाँ मैं जाऊँ, जहँ तेरा पता लगाऊँ ।  
 तुम बिन कहीं चैन न पाऊँ, रो रो दिन रैन बिताऊँ ॥  
 हे मेरे जीवन धन हो, मधुसूदन हो मोहन हो ॥ ४ ॥  
 मन मोहन मोहनि बाँकी, एक बार दिखा दो भाँकी ।  
 है सपथ तुम्हें राधा की, नन्द और यशोदा माँ की ॥  
 हे जीवोंके जीवन हो, मधुसूदन हो मोहन हो ॥ ५ ॥  
 हे नाथ भक्त दुखहारी, हे करुणा सिन्धु मुरारी ।







# परमानन्द संदेश

ॐ जय सद्गुरु शारदाराम

दुख खराडन परमानन्द मराडन, है इस पत्र का भाव ।

पढ़ै सुनै अमली बने, सो लख पावै प्रभाव ॥

वर्ष ३  
अङ्क १०

वाराणसी श्रावण संवत् २०२०

अगस्त १९६३ ई०

वार्षिक चन्दा पाँचरुपये  
एक प्रति-५० न०पै०

## मत भोग में आसक्त हो ।

है काम वैरी ज्ञानका, तज काम हो निष्काम रे ।  
है अर्थ साधक काम में, मत अर्थ से रख काम रे ॥  
कामार्थ कारण धर्म हैं, मत धर्म में अनुरक्त हो ।  
कर चाह केवल मोक्षकी, मत भोग में आसक्त हो ॥

निस्सार यह संसार दुःख-भराडार माया जाल है ।  
ऐसा यहाँ पर कौन है, खाता जिसे नहिं काल है ॥  
फिर मित्र-सुत-दारादि में, क्यों व्यर्थ ही संसक्त हो ।  
यदि इष्ट निजकल्याण है, मत भोग में आसक्त हो ॥



तृष्णा जहाँ होवे वहाँ ही जान ले संसार है ।  
 होवे नहीं तृष्णा जहाँ संसारका सो सार है ॥  
 वैराग्य पक्का धारकर, मत भूल विषयासक्त हो ।  
 तृष्णा न कर हो जा सुखी, मत भोग में आसक्त हो ॥

है बन्ध तृष्णामात्र, तृष्णा-त्याग सुखका मूल है ।  
 तृष्णा भयंकर व्याधि है, छेदे अनेकों शूल है ॥  
 दे त्याग तृष्णा भोगकी, निज आत्ममें अनुरक्त हो ।  
 तृष्णा न भज सन्तोष भज, मत भोगमें आसक्त हो ॥

तू एक चेतन शुद्ध है, यह देह जड़ अपवित्र है ।  
 तू सत्य अव्यय तत्त्व है, यह विश्व बन्ध्या-पुत्र है ॥  
 पहिचान कर तू आपको, हे तात । संशय मुक्त हो ।  
 नहीं है अधिक अब जानना, मत भोगमें आसक्त हो ॥

धारी हजारों देह, सुत द्वारा हजारों कर चुका ।  
 हैसता रहा, रोता रहा, सौ बार तनु धर मर चुका ॥  
 जहँ जहँ गया, दुख ही सहा, अब तो न व्याकुल चित्त हो ।  
 ब्रह्मात्ममें तल्लीन हो, मत भोगमें आसक्त हो ॥

धिक्कार है उस अर्थ को, धिक्कार है उस कर्मको ।  
 धिक्कार है उस कामको, धिक्कार है उस धर्मको ॥  
 जिससे न होवे शान्ति, उस व्यापारमें क्यों सक्त हो ।  
 पुरुषार्थ अन्तिम सिद्ध कर, मत भोगमें आसक्त हो ॥

मन, कर्म, वाणीसे तथा, सब कर्म है तू कर चुका ।  
 ऊंचा गया स्वर्गादि में, पातालमें भी गिर चुका ॥  
 अब कर्म करना छोड़ दे, भोला ! न देहासक्त हो ।  
 आसक्त हो स्व-स्वरूपमें, मत भोगमें आसक्त हो ॥

—श्री भोले बाबा



## भगवान् महावीर और उनका उपदेश



इक्ष्वाकुवंशके क्षत्रियोंमें अनेक शाखाएँ हो गयी हैं। उनमें ज्ञातवंशीय राजा सिद्धार्थकी राजधानी विहार प्रान्तका क्षत्रिय कुण्ड नगर था। आजसे २,५३७ वर्ष पूर्व चैत्र शुक्ल त्रयोदशीको रानी त्रिसला देवीकी गोदमें एक महापुरुषका प्रादुर्भाव हुआ। ये महापुरुष थे तीर्थंकर भगवान् महावीर। माता पिताने इनका नाम 'वर्द्धमान' रक्खा था। राजकुमार वर्द्धमान ने युवा अवस्था तक समस्त क्षत्रियोचित कलाओंका अभ्यास कर लिया। माताके आग्रह से समरवीर नामक नरेशकी कन्या यशोदा देवीसे इनका विवाह हुआ। इनके एक कन्या 'प्रिय दर्शना' नामक हुई। उसका विवाह जमाली नामक राजपुत्रसे हुआ।

राजकुमार वर्द्धमान अठारह वर्षके थे, जब उनके माता-पिताने शरीर-त्याग किया। महावीर गृहत्यागकर 'निग्रन्थ मुनि' होनेको दीर्घकाल से उत्सुक थे। भाई नन्दिवर्द्धनके आग्रहसे दो वर्ष और उन्हें घर रहना पड़ा। घर रहते हुए उन्होंने दीन-दुखियोंमें राजकुलके संचित द्रव्य का दान प्रारम्भ किया। एक वर्षमें तीन अरब, अठ्ठासी करोड़, अस्सी लाख स्वर्णमुद्राओंका दान कुमार वर्द्धनने याचकोंको किया।

तीस वर्षकी अवस्थामें गृह त्यागकर राज-कुमार वर्द्धमानने दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा ग्रहण करते ही उन्हें 'मनः पर्यायज्ञान' (दूसरेके मनकी बात जाननेकी शक्ति) हो गयी। मनपर सम्यक् विजय तथा सर्वज्ञताकी सिद्धिके लिये उन्होंने उग्रतप प्रारम्भ किया। यह तप साढ़े बारह वर्ष चला। इसमें कभी-कभी छः छः महीने वे निर्जल उपवास करते रहे। कभी महीनो खड़े-ध्यान करते रहते। साढ़े बारह वर्षोंमें कुल चौतीस बार उन्होंने आहार ग्रहण किया था।

'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'—राजपुत्र वर्द्धमान के तपमें अनेक विघ्न आये। उन्हें मनुष्य, पशु, प्रकृति तथा देवताओंने नाना प्रकारसे उत्पीड़ित किया। जंगली अमीरोंने उनके पैरोंमें अग्नि लगा दी। उनके कानोंमें काष्ठकी कीलें ठोक दी। सर्प, बिच्छू तथा दूसरे पशुओंने उन्हें भयंकर कष्ट दिये। आँधी, वर्षा, लु, ओले—सबने उन महामनस्वीको डिगानेका घोर प्रयास किया। 'संगम' नाम एक दुष्ट देवता (पिशाच) ने उनको नाना प्रकारसे यन्त्रणायें दीं। वे सामान्य मनुष्य नहीं थे। उनका निश्चय हिमालयकी भाँति अविचल था। इन्द्रने उनके धैर्य तथा मनोबलको ही देखकर उन्हें 'महावीर'



कहा । अन्ततः तपस्या पूर्ण हो गयी । अन्तः करणके दोष एकान्ततः नष्ट हो गये । महावीर वीतराग, सर्वज्ञ एवं महासिद्ध हो चुके थे ।

‘भूत दया और अहिंसा’—भगवान् महावीरने लोकमें इस कल्याणमय धर्मका उपदेश प्रारम्भ किया । इन्द्रभूत-जैसे प्रख्यात विद्वानोंने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया । बड़े-बड़े नरेश उनके उपदेशसे साधु हुए । सभी वर्ण सभी जातिके लिए उनके धर्मका द्वार उन्मुक्त था । उनके शिष्योंमें चारों वर्णके मुख्य महापुरुष हुए हैं । राजगृह, श्रावस्ती, वैशाली जैसे प्रमुख नगरोंमें भगवान्ने चातुर्मास्य किया । मगध, बंगाल, बिहारकी प्रजाका उनके प्रति अगाध प्रेम था । राजा विम्बसार, नन्दिवर्धन, चण्ड, प्रद्योतन, चेतन, उदयन, प्रसन्न चन्द्र, अदीन-शत्रु प्रभृति नरेश महावीर स्वामीके शिष्य थे । तीस वर्ष तक धर्म-प्रचार करके वह चार वर्षकी आयुमें कार्तिक कृष्ण अमावस्याको पावा पुरीमें उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया ।

एक ही वस्तुमें देश, काल तथा अवस्था भेदसे अनेक विरुद्ध या अविरुद्ध धर्मोंका होना सम्भव है । अतः एकान्त रीतिसे अमुक वस्तुका अमुक धर्म है, दूसरा नहीं यह कहना ठीक नहीं । इस ‘स्याद्वाद’ सिद्धान्तकी महावीर स्वामीने स्थापना की । समाजमें दया, परोपकार और अहिंसा तथा जीवनमें त्याग, तितिक्षा, तप, संयम, इन्द्रिय निग्रह—यही मनुष्य-जातिके लिए उनके अमृत-सन्देश हैं । अहिंसाको जितने व्यापक एवं सार्वभौम रूपमें जैन धर्ममें ग्रहण

किया गया है, उतने व्यापक रूपमें वह दूसरे किसी धर्ममें नहीं ली गयी । घोर तपस्या और उससे प्राप्त सिद्धियोंके लिए जैन महात्मा सदा प्रख्यात रहे हैं । भगवान् महावीरने मानव-संस्कृतिको अहिंसा और त्याग तथा तपका जो वरदान दिया, वह अनेक जातियों के लिये आदर्श हुआ । मनुष्य अपनी दुर्बलतासे उसे भले अपना न सके, परन्तु यह स्वतः सिद्ध है कि उसकी उन्नति तथा कल्याण त्याग, संयम और हिंसासे निवृत्त होनेमें ही है ।

### धर्म-सूत्र

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है । (कौन-सा धर्म ?) अहिंसा, संयम और तप । जिस मनुष्यका मन उक्त धर्ममें सदा संलग्न रहता है, उसे देवता भी नमस्कार करते हैं ।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाँच महाव्रतोंको स्वीकार करके बुद्धिमान् मनुष्य जिन द्वारा उपदिष्ट धर्मका आचरण करें ।

छोटे-बड़े किसी भी प्राणीकी हिंसा न करना, अदत्त (बिना दी हुई वस्तु) न लेना विश्वासघाती असत्य न बोलना—यह आत्म निग्रही—सत्पुरुषोंका धर्म है ।

जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधियाँ नहीं बढ़ती, जब तक इन्द्रियाँ हीन (अशक्त) नहीं होती, तब तक धर्मका आचरण कर लेना चाहिये—बादमें कुछ नहीं होने का ।

जो मनुष्य प्राणियोंकी स्वयं हिंसा करता



है, दूसरोंसे हिंसा करवाता है और हिंसा करनेवालोंका अनुमोदन करता है, वह संसारमें अपने लिये बैरको बढ़ाता है।

संसारमें रहने वाले चर और स्थावर जीवों पर मनसे, वचनरो और शरीरसे—किसी तरह दण्डका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता। इसीलिये निर्ग्रन्थ (जैन मुनि) घोर प्राणि-वधका सर्वथा परित्याग करते हैं।

ज्ञानी होनेका सार यही है कि वह किसी भी प्राणीकी हिंसा न करे। इतना ही अहिंसाके सिद्धान्तका ज्ञान यथेष्ट है। यही अहिंसाका विज्ञान है।

अपने स्वार्थके लिये अथवा दूसरोंके लिये, क्रोधसे अथवा भयसे—किसी भी प्रसंग पर दूसरोंको पीड़ा पहुँचाने वाला असत्य वचन न तो स्वयं बोलना, न दूसरोंसे बुलवाना चाहिये।

श्रेष्ठ साधु परोपकारी, निश्चयकारी और दूसरोंको दुःख पहुँचाने वाली वाणी न बोले। श्रेष्ठ मानव इसी तरह क्रोध, लोभ, भय और हास्यसे भी पापकारी वाणी न बोले। हंसते हुए भी पाप वचन न बोलना चाहिये।

आत्मार्थी साधकको दृश्य (सत्य), परिमित, अशुद्धि, परिपूर्ण, स्पष्ट—अनुभूत, वाचल्यतरहित और किसीको भी उद्विग्न न करने वाली वाणी बोलना चाहिए।

काने को काना, नपुंसकको नपुंसक, रोगी को रोगी और चोरको चोर कहना यद्यपि सत्य है तथापि ऐसा नहीं कहना चाहिये।

जो भाषा कठोर हो, दूसरों को भारी दुःख पहुँचाने वाली हो—वह सत्य ही क्यों न हो—नहीं बोलना चाहिये।

## अस्तनेक—सूत्र

पदार्थ सचेतन हो या अचेतन, अल्प हो या बहुत—और तो क्या, दाँत कुरेदनेकी सीकके बराबर भी जिस गृहस्थके अधिकारमें हो, उसकी आज्ञा लिये विना पूर्ण संयमी साधक न तो स्वयं ग्रहण करते हैं, न दूसरोंको ग्रहण करनेके लिये प्रेरित करते हैं और न ग्रहण करनेवालोंका अनुमोदन ही करते हैं।

## ब्रह्मचर्य—सूत्र

यह अन्नब्रह्मचर्य अधर्मका मूल है, महादोषोंका स्थान है, इसलिये निर्ग्रन्थ मुनि मैथुन—संसर्गका सर्वथा परित्याग करते हैं।

आत्म-शोधक मनुष्यके लिये शरीरका शृंगार, स्त्रियोंका संसर्ग और पौष्टिक—स्वादिष्ट भोजन—सब कालकूट विषके समान महान भयंकर हैं।

श्रमण तपस्वी स्त्रियोंके रूप, लावण्य, विलास, हास्य, मधुरवचन, संकेत, चेष्टा, हाव-भाव और कटाक्ष आदिका मनमें तनिक भी विचार न लाये और न इन्हें देखनेका कभी प्रयत्न करें।

स्त्रियोंको राग पूर्वक देखना, उनकी अभिलाषा करना, उनका चिन्तन करना, उनका कीर्तन करना आदि कार्य ब्रह्मचारी पुरुषको कदापि नहीं करने चाहिये। ब्रह्मचर्यव्रतमें सदा रत रहने



की इच्छा रखने वाले पुरुषोंके लिये यह नियम अत्यन्त हितकर है और उत्तम ध्यान प्राप्त करनेमें सहायक हैं ।

ब्रह्मचर्यमें अनुरक्त भिक्षुको मनमें वैषयिक आनन्द पैदा करनेवाली तथा काम-भोगकी आसक्ति बढ़ानेवाली स्त्री-कथाको छोड़ देना चाहिये ।

### अपरिग्रह-सूत्र

प्राणिमात्रके संरक्षक ज्ञानपुत्र ( भगवान्-महावीर ) ने कुछ वस्त्र आदि स्थूल पदार्थोंको परिग्रह नहीं बतलाया है । वास्तविक परिग्रह तो उन्होंने किसीभी पदार्थ पर मूर्च्छाका-आसक्ति का रखना बतलाया है ।

पूर्ण संयमीको धन-धान्य और नौकर-चाकर आदि सभी प्रकारके परिग्रहोंका त्याग करना होता है । समस्त पाप कर्मोंका परित्याग करके सर्वथा निर्मम होना तो और भी कठिन बात है । ज्ञानी पुरुष संयम-साधक उपकरणोंके लेने और रखनेमें कहीं भी किसी प्रकारका ममत्व नहीं रखते । और तो क्या, अपने शरीर तक पर भी ममता नहीं रखते ।

संग्रह करना, यह अन्दर रहने वाले लोभ की भलक है । अतएव मैं मानता हूँ कि जो साधु मर्यादा-विरुद्ध कुछ भी संग्रह करना चाहता है, वह गृहस्थ है—साधु नहीं है ।

### विनय सूत्र

धर्मका मूल विनय है और मोक्ष उसका अन्तिम रस है । विनयसे मनुष्य बहुत जल्दी

श्लाघायुक्त सम्पूर्ण शास्त्रज्ञान तथा कीर्तिका सम्पादन करता है ।

इन पाँच कारणोंसे मनुष्य सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता—अभिमानसे, क्रोधसे, प्रमादसे, कुष्ठ आदि रोग और आलस्य से ।

जो गुरुकी आज्ञा पालता है, उनके पास रहता है, उनके इङ्गितों तथा आकारोंको जानता है, वही शिष्य विनीत कहलाता है ।

इन पन्द्रह कारणोंसे बुद्धिमान् मनुष्य सुविनीत कहलाता है—

उद्धत न हो, नम्र हो, चपल हो, स्थिर हो । मायावी न हो—सरल हो । कुतूहली न हो, गम्भीर हो । किसीका तिरस्कार न करता हो । क्रोधको अधिक समय तक न रखता हो—शीघ्र ही शान्त हो जाता हो, अपनेसे मित्रताका व्यवहार रखने वालेके प्रति सद्भाव रखता हो, शास्त्रके अध्ययनका गर्व न करता हो, मित्र पर क्रोधित न होता हो, अप्रिय मित्र की भी पीठ पीछे भलाई ही करता हो किसी प्रकारका भगड़ा फसाद न करता हो, किसीके दोषोंका भंडाफोड़ न करता हो, बुद्धिमान हो, अभिजात अर्थात् कुलीन हो, लज्जाशील, एकाग्र हो ।

शिष्यका कर्तव्य है कि वह जिस गुरुसे धर्म प्रवचन सीखे, उसकी निरन्तर भक्ति करे । मस्तक पर अञ्जलि चढ़ाकर गुरुके प्रति सम्मान प्रदर्शित करे । जिस तरह भी हो सके—मनसे, वचनसे और शरीरसे हमेशा गुरुकी सेवा करे ।

( शेष पृष्ठ ३२ में देखिये )

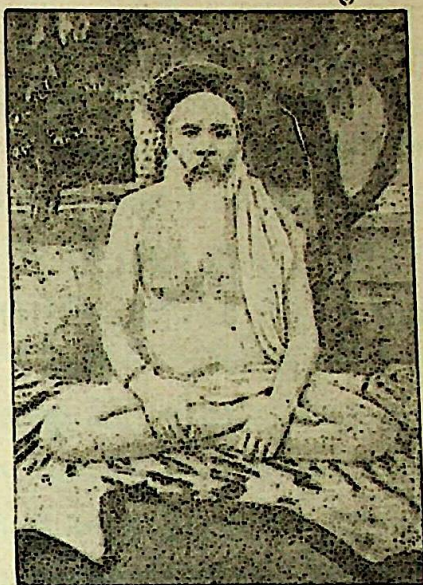


सन्त वाणी

सद्गुरु बाबा शारदाराम  
मुनि जी महाराजका

प्रवचन

ॐ



ॐ ब्रह्म को सिरनाय के, आत्म करो विचार ।  
सदा सबहि ॐ स्तुति, कर रहे वेद पुकार ॥

भाई, वहनो, सज्जनों ! आज मुक्ति-  
सोपानका थोड़ा सा बयान करेंगे । कई सज्जन  
रोज इसको बाँचते होंगे, इसका पाठ करते होंगे ।  
इसमें नौ सोपान हैं । इसमें ॐ का वर्णन किया  
गया है । इसी पर थोड़ा विचार करेंगे । नाममें  
छोटा बड़ा कोई अन्तर नहीं देखना । ब्रह्माने ॐ  
का उच्चारण करके सृष्टिकी रचना किया ।  
शिवजीने ॐ का समाधि लिया । इस लिए  
“साध कहे ताही सुन लीजो” । वैसे जिस भी  
नामसे याद करो प्रभु मिलता है । नौ सोपानमें  
प्रथम ॐकार बंदना, द्वितीय-निर्गुण बंदना,  
तीसरा निरंकारकी बंदना है । फिर निरंजन  
बंदना, ईश्वर बंदना, परमेश्वर बंदना, अच्युत  
बंदना, ब्रह्म बंदना और अन्तमें परमात्मा  
बंदना की गई है ।

मङ्गलाचरण

ॐ कार मंगल शान्ताकारम्,  
जय सर्व व्यापी ॐ कारम् ।  
जय निर्गुण मंगल शान्ताकारम्,  
जय सर्व व्यापी निर्गुण सुखसारम् ।  
जय निरंकार मंगल शान्ताकारम्,  
जय सर्व व्यापी निष्कामम् ।  
जय निरंजन मंगल शान्ताकारम्,  
जय सर्व व्यापी निरंजन सुखकारम् ।  
जय मंगल ईश्वर शान्ताकारम्,  
जय सर्व व्यापी ईश्वर दुःख पारम् ।  
जय परमेश्वर मंगल शान्ताकारम् ।  
जय सर्व व्यापी परमेश्वर उरधारम् ।  
जय अच्युत मंगल शान्ताकारम्,  
जय सर्व व्यापी अच्युत परमानंदम् ।



जय मंगल ब्रह्म शान्ताकारम्,  
जय सर्व व्यापी ब्रह्म सर्वाधारम् ।  
जय मंगल परमात्मा शान्ताकारम्,  
जय सर्व व्यापी परमात्मा अपारम् ।

श्रुति सोपानके मंगलाचरणमें प्रथम ॐ नाम है। यह ॐ नाम जो है सो मंगल स्वरूप है, शान्तिमय है, परमपद देने वाला है। यह ॐ सर्व व्यापी है। ॐ नाम वाला है। ॐ कैसे सर्व व्यापी है। जैसे आकाश व्यापक है, जैसे जल, अग्नि, वायु व्यापक है तैसे यह ॐ भी व्यापक है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं जो आत्मा है सो व्यापक है वैसे ही ॐ भी व्यापक है। एक अक्षर जो ॐ है सो ब्रह्म का स्वरूप है। ॐ वाचक शब्द है। सर्व व्यापी कहने से आकाश, पाताल यावत् रचनामें वही एक ब्रह्म भरा हुआ है।

निर्गुण ब्रह्मकी वन्दना है। इतना समझना कि हर लाइनमें शान्ताकारम् पद आया हुआ है। ब्रह्म जो है सो शान्त पद, शान्ति दायक एक रस है। इसलिए निर्गुण ब्रह्म सुख का सार है। आम के फल में सार वस्तु क्या है? उसमें सार है रस, उसमें छिलका है, बीज है उसके अन्दर और भी है। लेकिन सार तो रसको ही माना जाएगा। उसी प्रकार सब प्राणी मात्रका सार, जीवन, शक्ति दाता, विवेक दाता कौन है? ब्रह्म है।

आगे वर्णन आया है निरंकार का—उस प्रभुके कई नाम हैं। “असंख नाम असंख धाम्।” गुरु नानक जी महाराज भी अनन्त

नाम बताए हैं। सहस्र नाम बताया जाता है। एक विष्णु नामही सहस्र नाम बन गया है। उनमें से ही नौ नामोंका चुनाव किया है। उसीका वर्णन चल रहा है। फिर निरंकार क्या है? सर्वव्यापी है, निष्काम है। मनुजी लिखते हैं सर्व प्राणीमात्रका आधार निरंकार है। संसार में जो कुछ भी अन्न मेवा इत्यादि उपजता है सब कुछ जीवोंके कल्याणके वास्ते उपजा कर, आधार बन कर भी स्वयं निराधार है किसी वस्तुकी इच्छा नहीं रखता है। वह कामना रहित सम्पूर्ण है। किसीसे कुछ चाह नहीं रखता है। नुटि होती तो चाह रख सकता था। परन्तु वह तो परिपूर्ण है। निष्काम है।

निरञ्जन कहनेसे एक पद है। जैसे कि दम्पति एक है लेकिन उसमें स्त्री और पुरुष हैं, माया-ब्रह्म, माया-पति भगवान्। शिव कहनेसे महादेव शक्ति कहनेसे पार्वती निरञ्जनमें अंजन नाम है मायाका। उससे निर्-अंजन बन गया है। निर है अर्थात् निराधार है। ज्योति-स्वरूप माया है उसका संयुक्त नाम निरञ्जन है। निरञ्जन क्या है सुख दाता है। माया है सो ब्रह्मकी इच्छा है। इन्सानका बल, बुद्धि, विचार है सो शरीरसे अलग नहीं है। बाल-अवस्थामें बारह वर्ष तक बल नहीं रहता है। उसके बाद चालीस वर्ष तक ताकत रहता है। उसके बाद बल घटने लगता है। वृद्धावस्थामें फिर उठना बैठना दुस्तर हो जाता है। इससे पता चलता है कि बल है सो शरीरके अन्दर है। बुद्धि विवेक,



ज्ञान, विचार सब शरीरके अन्दर है। शरीर कमजोर हो जानेसे ज्ञान मन्द हो जाता है। प्रभु परमात्मा निराकारकी अञ्जन माया जीवोंके कल्याणके वास्ते, सुख देनेके वास्ते उनका लालन-पालन करती है। जब किसीकी माता नहीं रहती तो उन लड़कोंकी ठीक तरह सम्भाल नहीं होती। उनका पालन पोषण ठीकसे नहीं होता है। अमीर लोगोंकी और बात है परन्तु गरीबकी हालत बुरी हो जाती है। उन बच्चों को शान्ति और सुख देने वाली माया है। वह सुख कारक है। सुखदात्री है। कैसे सुख देती है? जैसे आकाशसे पानी बरसता है परन्तु वह आकाश स्वयं नहीं बरसता। बादलोंके द्वारा वर्षा होती है। आकाशकी सतह लेकरके पानी बरसता है। माया है सो सुखके वास्ते कार्य करती है। इन्द्रियाँ उसीकी सतह लेकर कार्य करती हैं। आँखका विषय है रूप, शब्द कान का विषय है, नाकका विषय है गन्ध-सुगन्ध। आकाश पातालमें माया ही भरी हुई है। सब जगह ब्रह्मलोकमें, मृतलोकमें, स्वर्ग लोगमें माया ही भरी है। फरक इसमें इतना ही है कि ब्रह्मलोकमें स्वर्गलोकमें सतोगुणी माया है सात्त्विक माया है, जो ज्ञान, विवेक दात्री है। मृतलोकमें रजोगुणी और तमोगुणी माया भरी हुई है। ज्ञानी पुरुषोंके वास्ते सतोगुणी भी है। माया क्यों भरी हुई है? सब जीवोंको सुख देनेके वास्ते। उसको देखनेके वास्ते एक ज्ञान दृष्टि है, एक अज्ञान दृष्टि है। जो ज्ञान दृष्टिसे देखेगा उसीके लिए माया यह अध्या-

त्मिक है और जो अज्ञानकी दृष्टिसे देखता है उसके लिए यही माया भौतिक है। ज्ञानमें ब्रह्म-सुखकी प्राप्ति होती है। संसारके सुखोंकी आशा नहीं रहती। अज्ञानी जीवोंके लिये संसारमें सुख है। संसारके सुख ये सब भौतिक सुख हैं, स्वर्गका सुख भी भौतिक ही है। सबसे उच्च परम ब्रह्मज्ञानका सुख है। जिसको प्रह्लादने प्राप्त किया है, नामदेवने प्राप्त किया है।

“ब्रह्मज्ञानीको खोजे महेश्वर,  
ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर।”

आगे ईश्वर नामके द्वारा ब्रह्मका रहनी बताया गया है। ब्रह्म क्या है? शांतमय है, मंगलमय है और ईश्वरमें कोई प्रकारका दुःख नहीं है। वह अपनी महिमामें निवास करता है। वह दुःख, सुखसे परे है। सर्व ऐश्वर्य वाला है।

परमेश्वर सर्वव्यापी कैसे है? सबके हृदय में हरदम रहकर प्राणी मात्रका संचालक है। सबको सतह दे रहा है। “जय अच्युत मंगल शांताकारम्”—इस अच्युत नामसे ब्रह्मको कम लोग ही जानते हैं। लेकिन गीतामें एक जगह ऐसा आया है। अर्जुन श्री कृष्ण भगवान्से कहता है हे—“अच्युत! हे भगवान्। मेरा मोह दूर हो गया है मैं लड़ाईके भयके भ्रमसे निवृत्त हो गया हूँ।” अच्युत भी प्रभुका नाम ही है। ब्रह्मका अच्युत नामसे भी वर्णन किए हैं। उसका अर्थ होता है जो कभी न घटे, जो कभी चुकता नहीं, जैसे भाँड़ेके अन्दरसे कोई चीज निकालता ही जावे तो वह खतम हो जावेगी। परन्तु ब्रह्म हर स्थान पर हर समय भरा ही



हुआ है। वह सबमें परिपूर्ण है। जब सृष्टि खाली हो जाती है तब ब्रह्म वाकी भरा रह जाता है। परमानन्द जो ब्रह्म है वह आनन्द स्वरूप है।

“जय ब्रह्म मंगल शांताकारम्”—ब्रह्म किसको बोलते हैं? जैसे दूधमें मक्खन है, मेंहदीमें रंग है। उसी प्रकार ब्रह्म व्यापक है। ब्रह्म भी एक नाम है। शांताकारम् यह शब्द हर जगह जोड़ा गया है। ब्रह्म है सो सर्वव्यापी है सबका आधार है, सबका सतह है, सबका मूल है। कैसे है? सूत है सो वस्त्रका आधार है। घड़ाका आधार मिट्टी है। कोई भी कैसा भी वस्त्र बना है सबमें सूत है। उसी प्रकार जीव मात्रमें प्राणीमात्रमें सर्वाधार ब्रह्म ही एक रस

भरा हुआ है। “सर्वखलु इदम् ब्रह्म”। सम्पूर्णा विश्वमें ब्रह्म भरा हुआ है। ब्रह्म ही सबको धारण किये हुए है।

“जय मंगल परमात्मा शांताकारम्”—यह आखीरका शब्द है। स्मृति, बुद्धि देने वाला वही परमात्मा है। महेश्वर रूपसे सबको सुख देने वाला है और शांत है। शांत रहनेसे सबको प्रकाश दे रहा है। वह अपार है उसका अन्त नहीं है, आकाशवत् अनन्त है।

मुक्ति सोपानके मंगला चरण पर आज विचार किया है। ब्रह्मकी आशा करके सबको सद्-गति प्राप्त होगी। इति शुभम्।

संग्रहकर्ता—सरदारशाह सलुजे

हंस अकेले ही रहो,

सुमिरो श्री रघुनाथ.....

सत्कार अतिथिका करने को कन्या कुछ धान कूटती थी।  
जिस जिस चूड़ी ने शब्द किया, भट फोड़ भूमि पर धरती थी।  
प्रति कर में चूड़ी बची एक मन फूली नहीं समाती थी।  
अब दूर हुआ भगड़ा सारा खुश हो पकवान बनाती थी।  
मानव समूह के साथ सदा कलहादिक का भय रहता है।  
यदि एक पुरुष भी साथ रहे मन बात-चीत में लगता है।  
बस इसीलिये होकर असंग विद्वान विचरता रहता है।  
कंकण समान एकाकी हो वह आत्म-ज्योति में रमता है।

कलहादिक भय होता है जन समूह के साथ।

‘हंस’ अकेले ही रहो सुमिरो श्री रघुनाथ ॥

श्री हंस मुनि



# साधना के मूल सिद्धान्त तथा विपरीत बुद्धि

लेखक—श्री स्वामी शिवानन्द जी

०

साधनाका मार्ग कठिनाइयों एवं समस्याओं के जंगलसे होकर गुजरता है। उन समस्याओंमें एक तो यह है कि आपका मन सर्वोत्तम मित्र है और साथ ही निकृष्ट शत्रु भी। मन आपका सच्चा मित्र तभी बनता है, जब उसे धीरे-धीरे प्रशिक्षित किया जाता है। आध्यात्मिक साधना में पर्याप्त उन्नति कर लेने के बाद ही मन सहायक बन जाता है। जब तक यह अवस्था नहीं प्राप्त होती, तब तक मनको अन्दर दुष्ट शत्रुके रूपमें ही समझना चाहिए। यह अत्यन्त कूटनीतिज्ञ, धूर्त तथा चालक है। यह सबसे बड़ा धोखेबाज है। मनकी चालाकियोंमें एक चालाकी यह है कि यह साधकको इस धोखेमें डाल देता है कि साधक अवश्य यह समझने लगता है कि उसने मन पर विजय पा ली है। मन असावधान साधकको ऐसे भ्रममें डाल देता है कि वह समझने लगता है कि मन मेरे वश में है; परन्तु अन्तमें उसे मूर्ख बनना पड़ता है। मनकी चालें सूक्ष्म हैं।

आपने यह सुना ही है कि शैतान अपने उद्देश्यके समर्थनके लिए शास्त्रोंकी उक्तियोंके उदाहरण दे सकता है उसी प्रकार मन भी किसी सद्गुणका प्रयोग पाप-कार्यमें कर सकता है। विपरीत बुद्धि तो इसका जन्मजात गुण

है। यह किसी निकृष्ट कार्यके समर्थनमें किसी अच्छे सिद्धान्तका आश्रय ले सकता है। जब तक उदासीन भावसे इसका अंतर्निरीक्षण नहीं करते, तब तक इसकी चालें पूर्ण रूपसे प्रकट नहीं होती।

कुछ विपरीत बुद्धिके उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं। सच्चे साधक उनसे पर्याप्त लाभ उठा सकते हैं।

साधकोंसे कहा जाता है कि 'स्त्रियोंके साथ रहते समय मातृ-भाव या देवी भाव बनाये रखिये।' आपकी शुद्धता तथा आध्यात्मिक उन्नतिके लिए यह महान् आदर्श है। परन्तु इसका अर्थ नहीं कि आप स्त्रियोंके साथ रहिए और न इसका यही अर्थ है कि यदि आप इस भावको रक्खें तो आपको स्त्रियोंके साथ चलने फिरनेकी छूट मिल गई है। मन तो कहेगा, 'क्यों नहीं, यदि ऐसा करूँ तो हानि क्या? उनसे दूर भागना तो कायरता है। जब देवी भाव रखते हैं, तो डर क्या है?' सावधान! हे साधक! इस वासनाके प्रति सावधान! देवी भावका अर्थ अपने नियंत्रणोंको दूर हटाना नहीं है, साथ ही स्त्रियोंसे घृणा भी नहीं रखना है। स्त्रियोंका आदर कीजिए परन्तु कुछ दूरी पर रख कर ही। देवी भाव इत्यादिका यह



अर्थ नहीं है कि आप सदा उनके साथ रहें। मनका निरीक्षण कीजिए।

दूसरा सिद्धान्त है : आप फुफकार मार सकते हैं, परन्तु हँसिए नहीं—आप धमका सकते हैं, परन्तु दण्डित न कीजिए। यह सिद्धान्त उनके लिए लाभदायक है, जो व्यवहारिक जीवनमें अत्यन्त सीधे हैं। परन्तु यह नीति साधना मार्ग अथवा निवृत्ति मार्गके साधकोंके लिए उपयुक्त नहीं है। निश्चय ही नहीं है। साधक इन शब्दों पर ध्यान रखें। साधक न तो धमकावे और न दण्ड ही दे। यदि आपने फुफकारना शुरू कर दिया, तो यह आपकी आदत हो जायेगी और आप सर्वत्र हर वस्तुको लेकर फुफकारते ही रहेंगे। अन्तमें आप हिंसात्मक कार्य कर बैठेंगे। मन सदा अवसरकी ताकमें रहता है। थोड़ी ढिलाई भी इसके लिए यथेष्ट है। यह स्वभावतः नीचेकी ओर जाना चाहता है। हे साधक ! नम्र बनिए, शिष्ट बनिए। दृढ़ परन्तु नम्र रहिए, यदि आप क्रोध करना चाहें तो अपने मनके प्रति क्रोध कीजिए। अहंकारको कुचल डालिए। पाँड़ुओंसे संग्राम कीजिए। मनका निरीक्षण कीजिए।

इस सिद्धांतका भी गलत अर्थ लगाते हैं : “दृढ़ रहिए। अपने सिद्धान्तों पर अटल रहिए। किंचित् मात्र भी न ढिगिये।” यद्यपि यह आदेश सर्वोत्तम है, फिर भी साधक इसे अपने हठी स्वभावका समर्थक मान बैठते हैं। हठ तामसिक गुण है, परन्तु मन आपको कहेगा कि यही आत्मबल अथवा दिव्य संकल्प है।

यही मनका काम है। यह साधकको अहंकारके साथ पूर्णतः आसक्त बना डालता है। यही प्रवंचना है। चतुर साधकको सात्त्विक निष्ठा तथा हठबाजीमें विवेक रखना चाहिए। दीर्घकालीन प्रयास, अनुशासन तथा संकल्प साधन के बिना आत्मबल मिलनेका नहीं। वास्तविक उन्नति दिव्य सिद्धान्तोंके प्रति ही आडिग दृढ़ताकी आवश्यकता है। अहंकारपूर्ण भावनाओं के प्रति निष्ठा तो हानिकारक ही हैं। अध्यात्मिक यौगिक नियमोंके पालनमें कट्टर बनिए ? परन्तु हठी न बनिए। धोखेमें न पड़िए मनका निरीक्षण कीजिए।

‘सदा सत्य बोलिए। स्पष्ट बोलिये।’ यह उपदेश है। जब आपसे पूछा जाय, आप सत्य ही बोलिए। इसका अर्थ यह नहीं कि आप हर व्यक्तिके सामने उसके सम्बन्धमें अपने विचार रखते चलें। यह सदाचार नहीं है। दूसरोंकी भावनाओं पर ध्यान न रखते हुए स्वेच्छापूर्वक अपने विचारोंको प्रकट करते रहना आर्जव नहीं है। यह कमसे कम अविचार तो है ही, परन्तु अधिक बढ़ने पर वह उदण्डता है। यह साधकको शोभा नहीं देता। जो आपको सत्य बोलने तथा स्पष्ट बोलनेकी शिक्षा देता है, वही आपके लिए यह भी उपदेश देता है कि ‘मित भाषण, मधुर भाषण कीजिए।’ मन आपको स्पष्टवादिताके बहाने दूसरोंको अपमानित करनेके लिये प्रोत्साहित कर सकता है। अप्रिय सत्यको न कहा जाय तो अच्छा ही है। यदि कहना अनिवार्य है तो उसे मधुर शब्दोंमें नम्रतापूर्वक कहिए। दूसरोंकी भावनाओं



पर आघात न पहुँचाना'—यह उपदेश उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि सत्य बोलना। सत्य तथा अहिंसा दोनोंको साथ-साथ चलना चाहिए। अपना अध्ययन कीजिए। मनका निरीक्षण कीजिए।

अब दूसरा सिद्धांत है :—वैराग्य, जो वास्तवमें मानसिक अवस्था है—मानसिक अनासक्ति है, मन इस सिद्धांतके द्वारा अपने अविवेक पूर्ण विषय-परायण जीवनका भी समर्थन करने लगता है। तर्क यही कहेगा—'हाँ, मैं तो इन सबोंसे आसक्त नहीं हूँ। मैं तो एक क्षणमें ही इनसे परे जा सकता हूँ। मैं तो स्वामीकी भांति इनका उपयोग करता हूँ। मैं तो मानसिक रूपसे अनासक्त हूँ।' विषयोंके सम्पर्क ने विश्वाभिन्न जैसे तपस्वियोंको गिरा डाला है अतः वैराग्यको आसान न समझिए। श्रमपूर्वक वैराग्यका अर्जन कीजिए। सावधानीपूर्वक वैराग्यकी रक्षा कीजिए। सावधान रहिए मनका निरीक्षण कीजिए।

'तपस्यामें अति नहीं करनी चाहिए'—इस उपदेशकी भी वैसी ही दुर्दशा होती है। मनुष्यका सहज स्वभाव इन्द्रिय परायण है। मन आराम चाहता है तथा तपस्यासे घृणा करता है। अविवेकी साधक उपर्युक्त सम्मति में 'अति' शब्दको हटा देता है और तपस्याको ही घृणासे देखने लगता है। परिणामस्वरूप वह विलासी बन जाता है। अल्पमात्र भी तितित्ता नहीं रह जाती तथा सैकड़ों इच्छाओंका दास बन जाता है। मूर्खतापूर्ण अतिके लिए

ही उपर्युक्त सावधानी वर्तनी चाहिए। परन्तु प्रारम्भिक अवस्थामें किसी सीमा तक साधकों को तपस्या अनिवार्य है। मन तो इस पक्षमें बहुतसे सुभावोंको प्रस्तुत करेगा। वह गीताको अपने पक्षमें लाकर यह दिखलाना चाहेगा कि भगवान् स्वयं तपस्याके विरोधी हैं। हे साधक! भगवान् ने तो तामसिक तपस्या ही का खण्डन किया है। उन्होंने तो शरीर, मन तथा वाणी की सात्विक तपस्याको आवश्यक बतलाया है। सावधानीपूर्वक मनन कीजिए। सदा मनका निरीक्षण कीजिए।

'सार वस्तु का ध्यान रखो। गौण (अनावश्यक) पर विशेष ध्यान न दो।' इस उपदेश को भी साधक अपनी आंतिका सहायक बना डालते हैं। मनका तो आलसी स्वभाव है ही। वह किसी प्रकारके नियम तथा सदाचारसे स्वभावतः घृणा करता है अतः वह सबोंको अनावश्यक समझ बैठता है। तब वच कया रहता है, यह तो ईश्वर ही जाने। मन जो कुछ चाहता है, एकमात्र वही आवश्यक है? साधक को विचार करना चाहिए कि आध्यात्मिक उपदेशका वास्तवमें अर्थ क्या है तथा उसे क्यों दिया गया है। आध्यात्मिक साधककी प्रगतिके अनुसार आवश्यक तथा अनावश्यक में विभेद भी है। जो साधना कालान्तरमें अनावश्यक प्रतीत होगी, वह साधना अभी आवश्यक हो सकती है। भूसे के साथ-साथ बहुमूल्य अन्नको न फेंक डालिए। मनका निरीक्षण कीजिए।

अन्ततः साधनाके विषयमें ही मन सबसे



बड़ा धोखा देता है। जिस साधनाको साधक अपने जीवनको दिव्य बनाने तथा अपना रूपान्तरण करनेके लिए अपनाता है, उसी साधनाको वह अहंकार तथा इन्द्रियोंके बिहारके लिए आधार बना डालता है। पूरी सच्चाई तथा हार्दिक प्रयासके बिना इस मोहक जालसे बचना कठिन है। इस कलुषके कारण ही साधक अपने मार्गमें स्तब्ध सा रह जाता है और वर्षों बाद भी उन्नति नहीं हो पाती। उदाहरणतः—युवक साधक गण जिनका गला मधुर है तथा जो संगीत प्रेमी हैं, स्वभावतः कीर्तन तथा भजनको अपनी साधना बना लेते हैं। कलाके द्वारा बहुतसे लोग आकृष्ट होते ही हैं, सारे शुभ कार्योंमें उनकी माँग होती है। वे सत्संगियोंमें विख्यात हो जाते हैं। सूक्ष्म मन जाल फैला देता है। दिनानुदिन कीर्तन और मधुर होता जाता है। उसके संगीतमें नए राग एवं तान भी आ जुड़ते हैं। कीर्तन एक साधन बन गया है जिससे वे अनजाने ही अपनी ख्यातिकी वृद्धि करने लग जाते हैं। इस प्रकार साधकके दो उद्देश्य हो जाते हैं : मुख्यतः ईश्वरका दर्शन और साथ ही साथ संसारका आकर्षण। परिणामतः साधना मोचन न बनकर बन्धन बन जाती है। माया विस्मयकारी तथा अनिर्वचनीय है। उसकी गति रहस्यमयी है।

निष्काम्य कर्मयोगको ही लीजिए। दूसरों की सेवा करना तथा प्रत्युपकारकी भावना न रखना व्यवहारिक जगत्के लिए अश्रुत वस्तु

ही है। निष्काम्य सेवा अतिमानव समझा जाने लगता है। उसके लिए सभी दरवाजे खुले हुए हैं। बहुतसे लोग उसके सामने अपनी कठिनाइयाँ रखते, अपने हृदय खोलते तथा अपनी गुप्त समस्याओं को उसके सामने प्रस्तुत करते हैं। यहाँ साधक जीवनके छूरेकी धार पर चलता है। मन शैतान है। लोगोंके निकट सम्पर्कमें रहनेके कारण विषयपरायणताके लिए काफी क्षेत्र मिल जाता है। दम्भ तथा पाशविकता उसके भीतर घुस पड़ते हैं। साधक निष्काम्य सेवामें खूब दिलचस्पी लेने लग पड़ता है; परन्तु निर्मम अन्वेषण करने पर पता लगेगा कि यह साधना विषय परायणता की उतनी ही पोषक है, जितनी कि सेवा की। अतः मन साधनाको विनष्ट कर डालता है।

तितिक्षाका अभ्यासी साधक भी ऐसे ही कुछ सुप्त चेतन कारणोंसे तितिक्षासे आसक्त हो जाता है। उसकी तितिक्षा उसके लिए यश का साधन बन जाती है। वह असाधारण सिद्ध समझा जायगा। तितिक्षा साधनाके उद्देश्य की पूर्ति होने पर भी वह तितिक्षामें लगा रहेगा क्योंकि इस साधनाने जिस पदको उसे प्रदान किया है, उस पदको वह त्यागना नहीं चाहता। दूसरे प्रकारके साधक शरीर तथा उसकी माँगके प्रति उदासीन होनेके कारण केश बनाना भी नहीं चाहते। प्रारम्भमें उनमें पूरी सच्चाई रहती है, परन्तु इस उदासीनताके कारण केश दाढ़ी लम्बे हो जाते हैं और तब साधक मायाका शिकार बन बैठता है। अब वह केश सँवारता,



दर्पणमें चेहरा देखता, तेल लगाता तथा फैशन-  
दार कपड़े पहनने लगता है ! क्षणमात्रमें  
भ्रम उत्पन्न होकर साधक को अपना शिकार  
बना बैठा है । ठीक उसी प्रकार कुछ  
लोग हठयोगके आसनों द्वारा अति भोजन  
में सहायता पाते हैं । बज्रौलीको व्यभिचारका  
साधन बना बैठते हैं तथा योग भोगका साधन  
बन जाता है । ये सारे भ्रम असंस्कृत मनसे  
उत्पन्न होते हैं, अतः मनका निरीक्षण कीजिए ।

सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि मन  
आपको उपर्युक्त उपदेशों पर गम्भीरतापूर्वक  
विचार करने नहीं देगा । वह कहेगा—“आप  
ठीक कह रहे हैं, परन्तु यह आपके लिए नहीं  
है । इन सब पर ध्यान न दीजिए । जैसे चल  
रहा है चलने दीजिए ।” हे साधक ! मनकी  
बातों पर ध्यान न दीजिए । इस दुष्टको सहयोग  
न दीजिए उपदेशोंको हृदयंगम न कीजिए ।

मार्गमें आप कहाँ है,—ठीक-ठीक इसको  
ज्ञात करना बड़ा कठिन है । मनकी चालें बहुत  
सूक्ष्म हैं । सतत विचार आपको सावधान और  
सुरक्षित रखेगा । गम्भीर अन्तर्निरीक्षणसे ही  
आप मनके रहस्यको समझ सकते हैं । मनके  
अन्दर घूमते जाइए । मनको ढीला न छोड़िए ।  
मनके गुप्त विचारोंको ढूँढ़ निकालिये । नित्य-  
प्रति इसका विश्लेषण कीजिए । विचारके द्वारा  
मनका विश्लेषण कीजिए गुरुकी कृपाके लिए  
प्रार्थना कीजिए । गुरु ही मनको पराजित कर  
उसे आपके अधीन बना सकेगा । ईश्वरसे  
प्रार्थना कीजिए कि वह ज्ञान-ज्योतिसे आपकी  
बुद्धिको विभासित करे । मनका निरीक्षण  
कीजिये । अन्तर्निरीक्षण, आत्मविश्लेषण, विवेक  
सावधानी तथा प्रार्थनाके द्वारा आप इस विचित्र  
मनके सूक्ष्म जादूको समझकर उसके भ्रमों तथा  
चालोंसे मुक्त हो सकते हैं ।

❀ परमानन्द सन्देश का आगामी अंक ❀

भगवान श्रीचन्द्राचार्य जन्मोत्सव

— १ सितम्बर को प्रकाशित होगा —

कृपालु विद्वान लेखकों एवं सन्त, महात्मा जनों से निवेदन है कि  
वे श्रीचन्द्रमहाराज एवं उदासीन मत से सम्बन्धित अपनी रचनायें लेख,  
कविता, चित्र आदि १५ अगस्त तक भेज देने का कष्ट करें ।

—सम्पादक



# श्रीअरविन्द वचनामृत

०

स्वतंत्रताका गहनतम अर्थ है अपने स्वभावके विधानके अनुसार पूर्णताकी ओर प्रसारित और वद्धित होनेकी शक्ति ।

\*

आध्यात्मिकता मानवात्माके स्वातंत्र्यका आदर करती है, क्योंकि वह स्वयं स्वतन्त्रतासे ही प्रसिद्ध होती है ।

\*

अनुशासन और विकासके बिना स्वतंत्रता कम ही लोगोंको दी जाती है ।

\*

एकत्व और बहुत्वके बीचकी इस सुसंगति में ही जीवनका रहस्य छिपा है ।

\*

समझौता तो एक सौदा है, दो विरोधी शक्तियोंके बीच हितोंका लेन-देन है; यह सच्चा मेल-मिलाप नहीं है । सच्चा मेल-मिलाप तो सदा एक ऐसी पारस्परिक समझसे आता है जो दोनोंको एक प्रकारके घनिष्ठ एकत्वकी ओर ले जाती है ।

\*

आध्यात्मिक जीवन किसी निर्विशेषका नहीं वरन् सचेतन और बहुविशिष्ट एकत्वका प्रद्यन है ।

\*

केवल उच्चतमके प्रकाश और शक्तिसे ही निम्नतम पूर्ण रूपसे संचालित, उन्नत और सुसंपन्न हो सकता है ।

\*

ऐसा कोई नियम नहीं कि ज्ञान कठोर रूपसे गम्भीर और मुस्कानसे रहित हो ।

\*

मुस्कान आंसुओंसे कहीं अधिक मूल्यवान् सम्पत्ति है ।

\*

विनोद प्रियता जीवनका स्वाद है ।

\*

परम प्रभुका सर्वांगपूर्ण यन्त्र होनेसे बढ़ कर कोई दूसरा सम्मान अथवा गौरव नहीं ।

\*

तलवार ने यह नहीं कहा था कि मेरा निर्माण करो, वह न प्रयोग करने वालेका प्रतिरोध करती है और न टूट जाने पर शोक ।

\*

सब धन तो भगवान्का है और जिनके पास वह होता है वे तो केवल न्यासकारी (Trustee) हैं अधिकारी नहीं । आज यह उनके पास है, कल यह दूसरी जगह हो सकता



है। सब इस बात पर निर्भर करता है कि वे इस न्यासका निर्वाह जब तक वह उनके पास है किस तरह करते हैं, किस भावसे करते हैं, इसका व्यवहार किस चेतनासे तथा किस उद्देश्यसे करते हैं।

\*

धनके आकांक्षी अथवा अधिपति इसके अधिकारी नहीं, वरन् बहुधा इसके द्वारा अधिकृत होते हैं।

\*

मानव-विचारमें किसी आदर्शका अभ्युदय बराबर ही प्रकृतिगत एक आकांक्षाका सूचक है, परन्तु सदा ही यह आकांक्षा सम्पन्न करनेके लिये नहीं होती। क्योंकि प्रकृति अपनी पद्धतियों में बड़ी धीमी और धैर्यशील होती है।

\*

साधारण मानवी प्राण-प्रकृतिके पंकिल पथमें मुलायम और दुर्बल मिट्टी होनेकी अपेक्षा भगवानके पथ में पत्थर होना कहीं अच्छा है।

\*

साधारण जन वे नहीं जो अज्ञानी हैं, गरीब हैं, अनभिजात हैं अथवा जिसका पालन-पोषण ठीकसे नहीं हुआ है; साधारण जन तो वे सब हैं जो क्षुद्रतासे ही, साधारण मानव जीवनसे ही सन्तुष्ट हैं।

\*

केवल जो सदा से था वही सदा रह सकता है और केवल जो अपनी सत्तामें अनन्त है वही शक्ति और गुणमें भी अनन्त हो सकता है।

\*

हमारे कर्मोंका मूल्य उनके बाहरी स्वरूप तथा परिमाणमें उतना नहीं जितना कि हमारे अन्दर निवास करने वाले भगवान्की ओर बढ़ने में उनके सहायक होनेमें है।

\*

भगवान्के लिये किया गया शारीरिक श्रम उस मानसिक अनुशीलनसे कहीं अधिक दिव्य है जो अपने ही विश्वास, प्रसिद्धि अथवा मानसिक परितोषके लिये सम्पन्न किया गया।

\*

काव्य, कला और संगीतसे लेकर बढ़ई गिरी, रसोई और भाङ्ग-बहारू तकके सब काम जो भगवान्के लिये किये गये हों, उन्हें अपने सूक्ष्मतम बाहरी व्योरेमें तथा जिस भावसे किये गये हों उस भावमें भी पूर्ण होना चाहिये, क्योंकि तभी वे पूर्ण रूपसे योग्य अर्घ्य बनते हैं।

\*

जीवन और कायाका अतिक्रम तो करना होगा, लेकिन उनका भी व्यवहार करना होगा और उन्हें भी पूर्ण बनाना होगा।

\*

कोई उसका पथ-निर्देश नहीं कर सकता जिसके प्रति वह बिलकुल सहानुभूति नहीं रखता जिसको वह घटा कर देखना और हतोत्साह करना चाहता है।

\*

कविगण मृत्यु और बाहरी व्यथाओंको बहुत विवर्द्धित रूप देते हैं, परन्तु, एक मात्र दुःखांत नाटक है आत्माकी बिफलताएँ और एक मात्र महाकाव्य है मनुष्यका भगवान्की ओर विजय पूर्ण आरोहण।



धारावाहिक

# मानस सरस्वती

(गतांक से आगे)

श्री वेदान्ती जी

निष्कपट भावसे अर्थात् दिलाने, रिझाने, धन कमानेके लक्ष्यसे रहित होकर केवल स्वान्तःसुखाय भगवत गुणानुवादका कथन करे यह चौथी भक्ति है। अहर्निश गुरुमंत्रका दृढ़ विश्वाससे स्मरण चिन्तन करना पाँचवीं भक्ति है। पाँचवीं भक्तिमें विश्वास पर जोर इस कारण दिया गया कि गुरुमंत्र अलौकिक अर्थ में निष्ठा कराने वाला है और मंत्र जापककी बुद्धि लौकिक होती है। जैसे पृथ्वीसे सूर्यको ज्योतिष शास्त्र कई गुना बड़ा बतलाता है परन्तु नेत्रोंसे थालके बराबर ही दिखाई पड़ता है इस कारण ज्योतिषशास्त्र पर विश्वास किये बिना सूर्यको पृथ्वीसे कई गुना नहीं माना जा सकता उसी प्रकार गुरु मंत्र अपने इष्ट रामको सर्वात्मा बतलाते हैं परन्तु लौकिक बुद्धिसे राम आत्मासे भिन्न प्रतीत हो रहे हैं, गुरुमंत्र संसारको रज्जु-सर्पवत् बतलाता है परन्तु लौकिक बुद्धिसे संसार सत्य अनुभूत होता है। इस कारण गुरुमंत्र पर दृढ़ विश्वास किये बिना भगवान् रामको निर्गुण निराकार व्यापक जानना और

उनको ही अपना वास्तविक स्वरूप जानना तथा संसारको रज्जुसर्पवत् सच्चिदानन्दरामका विवर्त और अविद्याका परिणाम जानना असम्भव है। अतः दृढ़ विश्वासको भक्तिका प्राण समझना चाहिये। मन इन्द्रियोंको वशमें करके समस्त अशुभ कर्मोंका परित्याग करना और शुभ कर्मोंके फलकी इच्छाका त्याग करना और सज्जनोंके धर्मोंमें निरन्तर रत रहना छठी भक्ति है। भगवान् रामने सज्जनोंके धर्मोंका निरूपण किया है। यथा—

जननी जनक बंधु सुत दारा ।  
तन धन भवन सुहृद परिवारा ।  
सबकै ममता ताग बटोरी ।  
ममपद मनहिं बाँधि बटि डोरी ॥  
सम दरसी इच्छा कछु नाहीं ।  
हरप शोक भय नहिं मनमाहीं ।  
अस सज्जन मम उर बस कैसे ।  
लोमी हृदय बसइ धन जैसे ।

जैसे कंकड़ कोयला सोना, मणि-माणिक्य सर्वको पृथ्वीमय देखना चाहिए उसी प्रकार



समस्त संसारको सच्चिदानन्द राममय देखना चाहिए। और जैसे कंकड़ कोयलासे तथा पृथ्वी से भी मणिमाणिक अधिक मूल्यवान हैं उसी प्रकार सोना, मणिमाणिकके समान सन्तोंको कंकड़ कोयलाके समान इतर जड़ जंगम प्राणियों से तथा पृथ्वीके समान मुक्त निर्गुण व्यापक सामान्य चेतनसे भी अधिक श्रेष्ठ मानना चाहिए क्योंकि सन्तोंके बिना मेरे परमार्थ स्वरूपका ज्ञान उसी प्रकार असम्भव है जैसे नेत्रके बिना रूपका ज्ञान असम्भव है। अतः मुक्त सच्चिदानन्द ब्रह्मसे भी सन्तोंको अधिक मानना और सम्पूर्ण चराचर जगतको मुक्त सच्चिदानन्द रामसे ओत-प्रोत देखना सातवीं भक्ति है। शरीरकी स्वेच्छा परेच्छा तथा अनिच्छा प्रारब्ध से सुख दुःखके आने जानेमें अपना कुछ भी हानि लाभ उसी प्रकार न समझना जैसे स्वप्न के सुख दुःखसे जाग्रत शरीरका कुछ भी लाभ हानि नहीं होती और शत्रुको भी राममय जानकर उससे कदापि द्वेष न करना आठवीं भक्ति है। शरीर मन वाणीसे किसीको भी कष्ट न पहुँचाना और छल कपट भेद बुद्धिसे सर्वथा रहित हो जाना तथा जैसे तरंग जलकी ही शरणमें रहती है उसी प्रकार मुक्त सच्चिदानन्द सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान रामकी शरणमें रहना और संसारको स्वप्न जानकर स्वप्नके प्रिय पदार्थोंके योग-वियोगमें हर्ष और दीनताको प्राप्त न होना नवीं भक्ति है। ये नव प्रकारकी भक्ति धारण करनेसे मुक्त सच्चिदानन्द ब्रह्मका अपरोक्ष ज्ञान होता है और अपरोक्ष ज्ञानसे कैवल्य परमपदकी

प्राप्ति होती है। शवरीमें नवो प्रकारकी भक्ति विद्यमान होनेसे वह सर्वात्मा सर्वाधिष्ठान हरिमें उसी प्रकार लीन हो गई जैसे घट फूटनेपर घटाकाश महाकाशमें लीन हो जाता है।

हे उमा ! शवरीको मोक्ष देनेके पश्चात् भगवान् रामके पास नारद आए और प्रश्न किया कि—

तव विवाह मैं चाहउँ कीन्हा।

प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा।

इसका समाधान करते हुए भगवान् रामने उत्तर दिया कि—

सुनु मुनितोहि कहउँ सहरोषा।

भजहि जे मोहि तजि सकलभरोसा।

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी।

जिमि बालक राखइ महतारी।

फिर नारद ने भगवान्को प्रसन्न करके

एक सर्वोत्तम वर माँगा, उसको सुनो।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका।

श्रुति कह अधिक एकते एका।

राम सकल नामनते अधिका।

होउ नाथ अघ खग गन वधिका।

हे उमा ! यदि नारद राम नामको सर्व नामोंसे श्रेष्ठ होनेका वर न मागते तो काशीमें समस्त जीव जन्तुओंको शरीर छोड़नेपर समान मुक्ति देनेमें मैं कैसे समर्थ होता। यदि तुम कहो कि प्रणव भी सब नामोंसे श्रेष्ठ है, परन्तु यह भी तो विचार करो कि प्रणव मंत्र सबको सुनानेके लिए शास्त्र आज्ञा नहीं देता है। यदि शास्त्र विरुद्ध अनधिकारीको प्रणव सुनाने भी



लगूँ तो सुनने वालेको श्रुति प्राप्त नहीं हो सकती । अतः नारदने राम नामको सर्वश्रेष्ठ बनानेका वर भगवान रामसे माँगकर समस्त प्राणियोंका परम कल्याण किया क्योंकि राम नाममें प्राणिमात्रका समान अधिकार है । राम नाम भगवानके समस्त नामोंसे तो श्रेष्ठ है ही बल्कि रामके सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपों से भी श्रेष्ठ है सुनो—

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा ।  
अकथ अगाध अनादि अनूपा ।  
मोरे मत बड़ नाम दुहूते ।  
किए जेहिजुग निजबसनिजबूते ।  
एक दारु गत देखिय एकू ।  
पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू ।  
उभय अगम जुग सुगम नामते ।  
कहेउ नाम बड़ ब्रह्म राम ते ।  
व्यापक एक ब्रह्म अविनासी ।  
सत चेतन घन आनन्द रासी ।  
अस प्रभु हृदय अद्वत अविकारी ।  
सकल जीव जगदीन दुखारी ।  
नाम निरूपण नाम जतन ते ।  
सोउ प्रगटत जिमिमोल रतन ते ।

निर्गुण ते एहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार ।  
कहउँ नाम बड़ रामते, निज विचार अनुसार ॥

राम भगत हित नर तनुधारी ।  
सहि संकट किए साधु सुखारी ।  
नाम सप्रेम जपत अनयासा ।  
भगत होहि मुद मंगल वासा ।  
राम एक तापस तिय तारी ।  
नामकोटि खल कुमति सुधारी ।  
रिषिहित राम सुकेतु सुता की ।  
सहित सेनसुत कीन्ह विवाकी ।  
सहित दोष दुख दास दुरासा ।  
दलइ नाम जिमिरविनिसिनाशा ।  
भंजेउ राम आपु भव चापू ।  
भव भय भंजन नाम प्रतापू ।  
दंडक वन प्रभु कीन्ह सोहावन ।  
जनमन अमित नाम किए पावन ।  
निशिचर निकर दले रघुनन्दन ।  
नाम सकल कलिकलुष निकंदन ।

शवरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ ।  
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ ॥

### — सत्यनारायण —

सत्य ही परमात्मा है । सत्य पालन ही परमात्मा की सच्ची उपासना है । अनेक कष्टों को भेल कर भी सत्याचरण का दृढ़ निश्चय ही सत्यनारायण व्रत है । सर्वसाधारण को मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य धर्म पर चलने की प्रेरणा देना ही सत्यनारायण की कथा है । और सत्य का प्रचार ही सनातन धर्म है । —आत्माराम



# मानवकी क्या पहिचान है ?

( रचयिता—चौ० गंगाप्रसाद जायसवाल, डुमरांव )



मातु पिता गुरु पर की सेवा,  
करता जो निज करतव जान ।  
लेना पर का पाप समझता,  
देना अपना पुण्य महान ॥  
पातक-पुञ्ज भूठ<sup>१</sup> को समझे,  
सत्यहि<sup>२</sup> समझे जो भगवान ।  
“गंगा” धर्मग्रन्थ बतलाता,  
यह मानव की है पहचान ॥

१—“न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इतिहोवाच  
भूरियम् ।” भूठसे बढ़कर कोई अधर्म नहीं है ।  
“वाचो विचलितं यस्य सुकृतं तस्य हारितम् ।  
मेदिनी तस्य पापेन कम्पते च मुहुर्मुहुः ॥”  
अर्थ—जो भूठ बोलता है, उसका पुण्य  
नष्ट हो जाता है । उसके पापसे यह पृथ्वी  
बार-बार काँपती रहती है ?

साँच बरोबर तप नहीं, भूठ बरोबर पाप ।  
जाके हिरदय साँच है, वाके हिरदय आप ॥  
“भूठ कभी मत बोलिये, भूठ पापका मूल ।”  
“नहि असत्य सम पातक पुञ्जा ।”

२—“सत्यमेव परं ब्रह्म सत्यरूपो  
जनार्दनः ।” अर्थात् सत्य ही परम ब्रह्म है,  
सत्य ही जनार्दन है ( वही सत्यदेव या सत्य-  
नारायण है ) ।

धरम न दूसर सत्य समाना ।

आगम निगम पुरान बखाना ॥  
अर्थात् वेद, शास्त्र और पुराणोंमें कहा  
गया है कि सत्यके समान दूसरा कोई धर्म  
नहीं है ।  
नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।  
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥  
( उ० नि० )

मद्य मांस नहि पीता-खाता,  
करता नहीं धुम्र भी पान ।  
पर-हित दया अहिंसा हिय में,  
बोले प्रेम सुधा रस सान ॥  
सत्यब्रती वन, सत्य बोलता,  
सदाचार का रखता ध्यान ।  
“गंगा” सत्य-धर्म नहि छोड़े,  
मानव की यह भी पहचान ॥  
निर्बल को नहि सबल बनाया,  
जो होकर अपने बलवान ।  
भूखे प्यासे नंगे जनकौ,  
तप्त किया नहि जो धनवान ॥  
मूढ़ों को नहि विज्ञ बनाया,  
“गंगा” जो होकर विद्वान ।  
किया न जो उपकार किसी का,  
वह नर मरघट-राख समान ॥



# संसार से शिक्षा

श्री हंस मुनि जी

ॐ

सन्तों से तुम सद्गुण सीखो, सद्गुरु से प्रभु पाना ।  
सती नारियों से तुम सीखो, मन की गति ठहराना ॥  
खिले हुए फूलों से सीखो, हँसना और हँसाना ।  
और सदा वृत्तों से सीखो, फलकर नित भुक्क जाना ॥

सूई और धागे से सीखो, बिछुड़े बन्धु मिलाना ।  
दूध और पानी से सीखो, मिलकर प्रेम बढ़ाना ॥  
चातक और चकोर से सीखो, प्रीति की रीति निभाना ।  
अति हिम्मत टिट्ठिभ से सीखो, कोयल से तुम गाना ॥

हीरे से तुम धीरज सीखो, दुख में मत घबड़ाना ।  
नदियों से सीखो तुम अपने प्रियतम के घर जाना ॥  
धनी दरिद्र सुखी दुःखियों से सीखो पुण्य कमाना ।  
और सदा सीखो तुम सब जीवों के दुःख बटाना ॥

जलती हुई चिताओं से सीखो अभिमान हटाना ।  
मित्रो ! तुम दीपक से सीखो, जीवन ज्योति जगाना ॥  
काम क्रोध लोभादि प्रवल खल इनके बेग मिटाना ।  
अलि पतंग गज मीन मृगों सम व्यर्थ न आयु गवाना ॥

हंसों से तुम हरदम सीखो नीर क्षीर विलगाना ।  
त्याग अनात्मा नीर क्षीर सत आत्म तत्त्व अपनाना ॥  
तिमिर विनाशक सूरज के सम सीखो ज्ञान महाना ।  
ज्ञान भानु बिन दूर न हो तम मोह निशा अज्ञाना ॥

गुरु प्रताप आनन्द भयो जो सो किमि जाय बखाना ।  
“हंस” कहें अस मरना सीखो बहुरि न हो जग आना ॥



## ❀ धर्मका लक्ष्य—सच्चा ज्ञान ❀

श्रीसत्यनारायण मौनी

एक आत्माका जो मूल रूप है, वही सम्पूर्ण विश्वका भी है। यही नहीं किन्तु सब दृश्य रंग-चिरंगे काचोंमें जुड़े जुड़े रंगोंके भले ही दीख पड़ते हों। वास्तवमें उनका रंग भिन्न नहीं है। वेदान्त कह रहा है—‘तत्त्वमसि।’ अर्थात् वही तू है, जगत् से तू अपने को अलग न समझ। तू मन में द्रवित रखता है, इसीसे दुःख भोगता है यदि तुझे अखण्ड सुख भोगना है तो अखण्ड एकताका अनुभव कर। ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’ इस सिद्धान्तसे वेद ने सिद्ध कर दिया कि जगत् के सब पदार्थोंमें ब्रह्म भरा है। अधिक क्या, समस्त दृश्य सृष्टि ब्रह्म का ही व्यक्त रूप है। पुरुष में जो ब्रह्म है, वही स्त्रीमें है। छाती निकालकर चलनेवाले तरुण और धनुषके समान जिनकी कमर झुकी हुई है, उन लाठीके सहारे पैर रखनेवाले वृद्धोंके ब्रह्ममें अन्तर नहीं है। हम जो कुछ देखते हैं, छूते हैं या अनुभव करते हैं, वह सब ब्रह्ममय है। हम ब्रह्ममें रहते हैं, उसीमें सब व्यवहार करते हैं और उसीके आश्रयसे जीते हैं।

ब्रह्मकी उपासना करनेसे आपको किसीका भय न रहेगा। सिर पर आकाश फट पड़े या बिजली गिर पड़े, तो भी आपके आनन्दमें कमी न होगी। साँप और शेरोंसे दूसरे लोग भले ही डरें, आप निर्भय रहेंगे, क्योंकि उन क्रूर

जन्तुओंमें भी आपका शान्तिमय स्वरूप आप को दीख पड़ेगा। जो ब्रह्मसे एकरूप हुआ, वही वीर—वही सच्चा निर्भय है। महात्मा ईसा-मसीहका विश्वासघातसे जिन लोगोंने बध किया, उन्हें भी ईसाने आशीर्वाद ही दिया। सच्चे निर्भय अन्तःकरणके बिना यह बात नहीं हो सकती। ‘मैं और मेरा पिता एक हैं’—ऐसी जहाँ भावना हो, वहाँ भय की क्या शक्ति है कि वह पास भी आनेका साहस करे। समस्त विश्व को जो अपनेमें देखता है—उसमें तल्लीन होता है, वही सच्चा उपासक है, उसी ने जीवनका सच्चा कर्तव्य-पालन किया है। हमारे विचार, शरीर और मन जितने निकट हैं, उससे भी अधिक निकट परमात्मा हैं। उनके अस्तित्व पर ही मन, विचार और शरीरका अस्तित्व निर्भर है। हरेक वस्तुका यथार्थ ज्ञान होने के लिये हमें ब्रह्मज्ञान होना चाहिये। हमारे हृदयके अत्यन्त गूढ़ भागमें उसका वास है। सुख-दुःख, शरीर और युगोंके बाद युग आते और चले जाते हैं, परन्तु वह ब्रह्म अमर है। उसीकी सच्चासे संसारकी सच्चा है। उसीके सहारे हम देखते, सुनते और विचार करते हैं। वह तत्त्व जैसा हमारे अन्तःकरणमें है, वैसा ही क्षुद्र कीटमें भी है। यह बात नहीं कि सत्पुरुषों के हृदयमें उसका वास है और चोरोंके नहीं। जिस दिन हमें इस बातका अनुभव होगा, उसी



दिन सब सन्देह मिट जायँगे । जगतका विकट ज्ञान उनसे दूर है । उनका ज्ञान विशुद्ध ज्ञान पन्थ हमारे सामने उपस्थित है, इसका उत्तर मन्दिर का सोपान भर है । 'सब कुछ ब्रह्ममय 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' इस भावना के अतिरिक्त है'—यह अनुभव होना ही सच्चा ज्ञान है । क्या हो सकता है । भौतिक शास्त्रों ने जो ज्ञान यही धर्मका रहस्य है, विवेचक बुद्धिके आगे सम्पादन किया है, वह सच्चा ज्ञान नहीं, सत्य इसी धर्म ज्ञानकी विजय होगी ।

### तुलसीकी अमर वाणी

तुलसी पूर्व पापसे, हरिचर्चा न सुहाय ।  
जैसे ज्वरके वेगसे भूख नष्ट हो जाय ॥  
तुलसी काया खेत है, मनसा भयो किसान ।  
पाप पुण्य दोउ बीज हैं, वुवे सो लुने निदान ॥

ससि सम्पन्न सोह महि कैसी, उपकारीकी सम्पत्ति जैसी ।  
हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेमसे प्रगट होय हम जाना ॥  
कवहुँ प्रबल चल मारुत. जहँ तहँ मेघ विलाहि ॥  
जिमि कुपूत कुल ऊपजे, सम्पत्ति धर्म नसाहि ।  
अन्धकार वरु रविहि नसावै, राम विमुख न जीव सुख पावै ॥  
हिमते अनल प्रगट वरु होई, विमुखराम सुख पावैन कोई ।  
जहाँ सुमति तहँ सम्पत्ति नाना, जहाँ कुमति तहँ विपत निदाना ॥  
परहित वश जिनके मन माहीं, तिनकहँ जग दुर्लभ कछुताहीं ।  
बरसहि जलद भूमि नियराये, यथा नवहि बुध विद्या पाये ॥  
बुन्द अघात सहँ गिरो कैसे, खलके वचन सन्त सहे जैसे ।  
भूमि परत भा डाबर पानी, जिमि जीवहि माया लपटानी ॥  
सिमिट सिमिट जल भरे तलावा, जिमि सद्गुण सज्जन पह आवा ।  
सरिता जल जलनिधि मह जाई, होई अचल जिमिजन हरिपाई ॥  
अर्क जवास पात विन भयउ, जिमि सुराज खल उद्यम गयरु ।



आचार्य श्री भिक्षु स्वामीजी (भीखण जी) के

## अनमोल वचन

अन्धा और पँगुला—दोनों एक साथ मिलकर अटवीको पार कर डालते हैं, उसी तरह ज्ञान क्रियाके संयोगसे ही मोक्ष मिलता है। क्रिया ज्ञान नहीं है। वह जानती-देखती नहीं। क्रिया तो कर्मके रोकने, तोड़ने रूप—सँवर निर्जरा रूप भाव है। ज्ञान और दर्शन उपयोग है। वे बतलाते हैं—किस ओर दृष्टि रखना और किन मार्ग पर चलना। जो क्रियाको उपयोग कहते हैं, उनके मिथ्यात्वका गुरुतर रोग है। इसी तरह जो ज्ञानको क्रिया कहते हैं, उनके भी मिथ्यात्व है। ज्ञान और क्रिया भिन्न-भिन्न हैं। दोनोंको एक मत जानों। दोनोंके स्वभाव भिन्न-भिन्न हैं। ज्ञानसे जीवादि पदार्थ जाने जाते हैं, क्रियासे सन्मार्ग पर चला जाता है।

एक आदमी जानता है, पर करता नहीं। दूसरा करता है पर जानता नहीं। ये दोनोंही मोक्ष नहीं पा सकते। जो जानता है कि क्या करना और ( जो करना है वह ) करता है वही मोक्ष पाता है।

ताँबेके पैसेकी भी कीमत है और चाँदीके रुपयेकी भी कीमत होती है। इन दोनोंमें किसी को पास रखनेसे सौदा मिल सकता है। परन्तु भेषधारी तो उस नकली रुपयेको चलाने वाले हैं, जिससे सौदा मिलना तो दूर रहा, उलटी

फजीहत होती है।

यदि तुम्हें साधु-भावका पालन असम्भव मालूम दे तो तुम गृहस्थ ही कहलाओ और अपने शक्त्यनुसार व्रतोंका अच्छी तरह पालन करो। साधु बनकर दोषोंका सेवन मत करो। साधु-जीवनमें ढिलाई लानेकी चेष्टा मत करो।

पैसेको पानीमें डालनेसे वह डूब जाता है, पर उस पैसेको तपा और पीटकर उसकी कटोरी बना ली जाय और पानी पर छोड़ दी जाय, तो वह तैरने लगेगी इस कटोरीमें दूसरे पैसे को रखनेसे वह भी कटोरीके साथ तैरता रहेगा। इस तरह संयम—इन्द्रिय-दमन और क्रोधादिके उपशमसे तथा तपसे आत्माको कुशकर हल्का बनाओ। कर्म भारके दूर होनेसे आत्मा स्वयंही संसार-समुद्रके पार पहुँचेगी और अपने साथ दूसरोंका निस्तार करनेमें भी सफल होगी।

जो लोग सच्चे धार्मिक हैं, उनके अन्दर एक ऐसी स्थिरता होती है, जो सम्पत्-विपत् विचलित नहीं होती। आध्यात्मिक जीवनका सार ही यह है कि भयानक से भयानक विपत्ति भी उसे डिगा नहीं सकती। जो आत्मवान् हैं, वे दुनियाँसे ऊपर रहते हैं, दुनियाँको उन्होंने जीत लिया है। उन पर गोलियाँ बरस रही हों तो भी वे सच बोल सकते हैं। उनकी बोटी-



# ब्रह्म तरङ्ग

श्री स्वामी भोलेबाबाजी महाराज

अहाहा ! ओहोहो ! आनन्द का अथाह अपार सागर हिलोरें दे रहा है ! न यहाँ मैं हूँ, न तू है, न ज्ञाता है, न ज्ञान है न ज्ञेय है ! न ध्याता है, न ध्यान है, न ध्येय है ! एक ही अद्वितीय, कूटस्थ, शाश्वत, शान्त है । इसी का नाम विद्वानोंके लोकमें वेदान्त है । न पास है न दूर है, अपना आप हाजिर हुजूर है । अखण्ड आनन्दका अम्बुनिधि है, अक्षय शान्ति का पहाड़ है, निरूपम सुख का भण्डार है, न इसका वार है, न पार है, अपरम्पार है, सर्वाधार निराधार है, गिरागोपार है । जो इस रस को चखता है, वही याद रखता है । अनेक जन्मों तक जो कोई ईश्वर प्रीति के लिए स्वधर्मका आचरण करता है, वही ईश्वर, गुरु, शास्त्र और आत्म कृपा से इसको जान पाता है । दूसरों को स्वप्नमें भी इसका दर्शन नहीं होता । जब दर्शन ही नहीं होता, तो इसका प्राप्त करना और स्वाद लेना तो करोड़ों कोसों दूर है । कोई विरला माई का लाल, गुरुका बाल ही इसका दर्शन करता है, प्राप्त करता है

और स्वाद लेता है, दूसरे तो शास्त्रके जाल में पड़े हुए, शुष्क तर्क करते हुए अपना माथा पचाते रहते हैं । पानी के बिलोने से घी नहीं निकल सकता, घी तो दही बिलोनेसे ही हाथ आता है । इसी प्रकार बाहर आनन्द की खोज करनेवालों को इस अद्भुत आनन्द की प्राप्ति नहीं होती, जो भाग्यवान विषय-भोगों की आसक्ति छोड़ कर अपने हृदयमें ही खोज करता है, यानी बहिर्मुखता को त्यागकर अन्तर्मुख हो जाता है, वही इस अपूर्व रस का स्वाद लेता है यह विचित्र आनन्द है, अपूर्व सुख है, अनोखी शान्ति है । जैसे मछली के ऊपर-नीचे दायें-बायें जल ही जल होता है फिर भी जब तक वह उलटी नहीं होती, जब तक उसके मुख में पानी की बूँद नहीं जाती, इसी प्रकार ब्रह्मानन्द सर्वत्र सर्वदा भरा हुआ है, फिर भी जब तक मनुष्य बाहर के संसार को देखना छोड़कर अपने भीतर नहीं देखता, तक तक ब्रह्मानन्द की छाया तक भी भाग्य हीन नर पा नहीं सकता ।

---

घोटी भी काटी जाय, तो भी प्रतिशोधकी भावना उनके हृदयमें आग नहीं लगा सकती । उनकी दृष्टि विश्वव्यापिनी होती है इससे किसी सांसारिक आसक्ति या स्वार्थमें रत होना वे

मूर्खता और व्यर्थता समझते हैं । बलिदान, जो कीमतका विचार नहीं करता तथा आत्मोसर्ग जो बदलेमें कोई चीज नहीं चाहता, वही उनका नित्य जीवन होता है ।

---



# भगवद्भजन के सच्चे अधिकारी

लेखक—जयकान्त भा

०

भगवद्भजनका अधिकारी कौन है? यह प्रश्न सुनकर सभी लोग कहेंगे कि ईश्वर-भजन तो सभी कर सकते हैं और इसमें अधिकारका कोई प्रश्न ही नहीं खड़ा होता। भगवान ने भी गीता में कहा है :—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्यवसितो हि सः ॥

( गीता ९।३० )

अर्थात् कैसा भी दुराचारी व्यक्ति क्यों न हो किन्तु यदि अनन्य भावसे ईश्वर-भजन करता है तो वह साधु ही मानने योग्य है क्योंकि उसने अपना व्यवसाय (जीवन प्रवाह) सम्यक् अर्थात् ठीक बनाकर भली-भाँति निश्चय कर लिया है कि प्रभु-भजनसे बढ़कर इस संसारमें और दूसरी वस्तु नहीं है। अर्थात् भजनमें लगने से पहले उसका जो जीवन-प्रवाह दुराचारकी ओर बहता था उसको घुमाकर उसने सदाचारकी ओर बहने वाला बना दिया है।

इस सम्बन्धमें विचारणीय बात यह है कि भजन करनेके लिए मनुष्यको पहले अनन्यभाक् होना चाहिए अर्थात् ईश्वर-भजनके सिवा उसके अन्तःकरणमें और कोई दूसरी कामना नहीं होनी चाहिए। जब अन्तःकरण निष्काम हो

जाता है तभी मनुष्य अनन्य भावसे ईश्वरका भजन कर सकता है। यदि अन्तःकरण कामनाओंसे भरा है तो विषयोंकी प्राप्तिके लिए ही साधनके रूपमें ईश्वर-भजन होता है। अनन्य भावका यह अर्थ है कि हम लोगोंके पास अन्तःकरण केवल एक ही है—या तो उसमें विषय रहे अथवा ईश्वर-प्रेम। यदि अन्तःकरण विषयोंसे पूर्ण है तो उससे भगवानका सच्चा भजन कदापि नहीं हो सकता। श्री तुलसीदास जी कहते हैं—

जहाँ काम तहाँ राम नहीं, जहाँ राम नहीं काम।

तुलसी कबहुँ कि रहि सकै, रवि रजनी इकठाम ॥

अर्थात् जब तक अन्तःकरणमें विषयोंकी कामना है तब तक ईश्वर-भजन नहीं हो सकता विषय-कामना और ईश्वर-भजन दोनों विरुद्ध स्वभाव वाले होनेके कारण एक समयमें एक ही स्थानमें उसी प्रकार नहीं रह सकते जैसे रात्रि और सूर्य एक साथ नहीं रह सकते। सारांश यह कि ईश्वर-भजन करनेके लिए भोग पदार्थोंका त्याग करना आवश्यक है।

अब हमें यह विचारना है कि विषयोंसे मोहकी निवृत्ति कैसे हो? इसका सबसे बड़ा उपाय है सत्संग। सत्संगमें भगवानके रहस्यको



समझकर विषयोंसे आसक्ति हटानेका प्रयत्न करते रहना चाहिए। आसक्ति दूर होने पर अन्तःकरण निर्मल होगा और ईश्वरमें अनुराग होकर यथार्थ भजन हो सकेगा। मोह ही राग-द्वेष का कारण है। राग-द्वेषसे ही सारे द्वन्द-सुख-दुःख, लाभ-हानि, स्तुति-निन्दा आदि उत्पन्न होते हैं और इन्हींके कारण हमारा अन्तःकरण विषयोंसे परिपूर्ण रहता है। अतः अपने अन्तःकरणको निर्मल बनानेके लिए सत्संगका आश्रय लेना परमावश्यक है। सत्संग से निःसङ्गताकी उत्पत्ति होती है, निःसङ्गतासे निर्मोहत्व अर्थात् मोहादिसे विमुक्तता बढ़ती है, तदुपरान्त उससे निश्चलता आती है और तभी हम एकाग्र मनसे भगवद्भजन कर सकते हैं।

भगवद्भजनका अधिकारी बनने के लिए पूज्य गोस्वामी तुलसीदासजी ने अनेक विधियाँ बतलाई हैं। भक्तिके नौ साधनोंकी पृथक्-पृथक् व्याख्या करते हुए श्री तुलसीदासजीने सर्वोपरि स्थान (प्रथम भगति संतन्ह कर संग) सत्संग को ही दिया है। अनेक जन्मोंके पुण्य उदय होने पर ही मनुष्यको सत्संग प्राप्त होता है और यदि नियमपूर्वक वह उसका आश्रय ले तो निश्चय ही साधन-पथ सुलभ होता चला जाता है। साधन-पथ पर अग्रसर होनेके लिए इन बातोंका ध्यान अवश्य रखना चाहिए :—

( १ ) वाणीका निरोध—जितना जरूरत हो उतना ही बोलना और वह भी सत्य हितकर और प्रिय होना चाहिए। यदि यह न हो सके तो मौन रहना चाहिए।

(२) अपरिग्रह—अर्थात् किसी भी वस्तुका संग्रह न करना। संग्रह करनेसे प्राणी और पदार्थोंमें आसक्ति बढ़ती है और संसारमें आसक्त पुरुषसे कभी ईश्वर-भजन नहीं हो सकता।

( ३ ) भोग-पदार्थोंका त्याग—इह लोक या परलोकके किसी भी चीजकी इच्छा नहीं होनी चाहिए। यदि भोग पदार्थोंमें मन भटकता रहा तो ईश्वर-भजन कैसे होगा ?

(४) एकान्त सेवन—जहाँ तक हो जन-संसर्गसे दूर रहना। अर्थात् विषयी मनुष्यों में मिलना-जुलना जरूरतसे अधिक न रखे।

श्री चैतन्य महाप्रभु कहते हैं :—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

अर्थात् मनुष्यको सदा ही ईश्वरका भजन करना चाहिए। किन्तु इतनी योग्यता प्राप्त करने पर ही ईश्वर भजन हो सकता है। पहले तो इतना निरभिमानी हो कि अपनेको एक तृणसे भी तुच्छ समझे क्योंकि दीनता ग्रहण करने पर ही अहंकार-नाश होकर भजनमें प्रवृत्ति होती है। दूसरे यह कि वृत्तके समान सहनशील होना चाहिए। जैसे वृत्त शीत-घाम आदि सहन करते हुए पत्थर मारनेवालेको भी फल देता है, काटनेवालेका घर बना देता है, और स्वयं जलकर उसका भोजन बना देता है उसी प्रकार हमें भी उपकारी एवं सहनशील बनना चाहिए। तीसरे यह कि अपने लिए मान पानेकी इच्छा न करके, भूतमात्रमें मेरे



भगवान् विराजते हैं, ऐसा भाव रखकर प्राणी-मात्रको मन ही मन प्रणाम करना चाहिए। सबको सम्मान देना चाहिए। इतनी योग्यता प्राप्त कर लेनेके बाद ही मनुष्य यथार्थ भजन कर सकता है।

भगवद्भजनके लिए यहभी आवश्यक है कि हम अपने देह की केवल उतनी ही सेवा करें जितनेमें प्राण रह सके। जो व्यक्ति अपनी जरूरतोंको एकदम कम कर देता है, वही ईश्वर का भजन कर सकता है। ईश्वर-भजन करना प्रत्येक व्यक्तिका जन्म-सिद्ध अधिकार है तो भी मनुष्यसे भजन नहीं हो सकता, इसका कारण केवल यही है कि जब तक मनुष्य देह की सेवामें लगा रहता है तब तक देवकी सेवा का कर्तव्य उसके ध्यानमें नहीं आता। देहका भजन और देवका भजन दोनों एक साथ नहीं हो सकते। इस बातको शास्त्रमें इस प्रकार समझाया है :—

शरीर पोषणार्थं सन् य आत्मानं दिदृक्षति ।  
ग्राहं दारुधिया धृत्वा नदीं ततु" स इच्छति ॥

अर्थात् जिस मनुष्यको शरीरके पोषणकी चिन्ता है और जिसका सारा समय शरीरको सुख पहुँचानेमें चला जाता है, वह यदि आत्म-दर्शनकी इच्छा रखता है तो उसकी यह इच्छा लकड़ी समझकर मगरके ऊपर सवारी करके नदी पार होनेकी इच्छाके समान है।

भगवान् कहते हैं :—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।  
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥

( गीता ७।१३ )

अर्थात् मायाके तीनों गुणोंसे उत्पन्न हुए भोग-पदार्थोंसे सारा जगत् मोहमें पड़ा हुआ है, अतः मैं उन तीनों गुणोंसे परे हूँ, उसका महत्व मनुष्य नहीं समझ पाता। तात्पर्य यह कि तीनों गुणोंसे परे जो अविनाशी भगवान् हैं, उनका महत्व यदि हमें समझना है तो हमें भी तीनों गुणोंसे परे जाना होगा। गुणों ( सत, रज, तम ) के कार्य जगतके भोग पदार्थोंमें फँसे रहेंगे तो गुणातीतका स्वरूप समझमें नहीं आवेगा और जब तक भगवान्का महत्व समझमें नहीं आता है, तब तक भला उनका भजन कैसे होगा ? अतएव भगवद्भजन के लिए यह आवश्यक है कि अन्तःकरणसे भोगकी कामना मात्रको दूर करे। तभी भगवान् का महत्व समझमें आवेगा और जिस वस्तुका महत्व समझमें आ गया उसका भजन तो अपने आप होने लगेगा। जब तक मनुष्य अपने शरीर रूपी "शिव" का भजन करता है तबतक उसको 'शिव' का भजन नहीं सझता। तात्पर्य यह कि जब तक 'देह' को सुख पहुँचाने से मनुष्यको अवकाश नहीं मिलता, तब तक उसके ध्यानमें आता ही नहीं कि 'देव' का भजन करनाही मनुष्य-जीवनका कर्तव्य है। अतएव उससे भगवद्भजन हो कैसे ?

श्री शंकराचार्य जी कहते हैं —

लब्ध्वा सुदुर्लभतरं नरजन्म जन्तु-

स्तत्रापि पौरुषमतः सदसद्विवेकम् ।

सम्प्राप्य चैहिक सुखभिरतो यदि स्याद् ।

धिकं तस्य जन्म कुमतेः पुरुषाधमस्ये ॥



अर्थात् देव दुर्लभ मनुष्य शरीर प्रभुने दिया है, साथही विवेक बुद्धिका अमोघ दान भी दिया है। विवेकसे नित्यानित्य तथा आत्मा-अनात्माका भेद समझकर नित्य आत्म-स्वरूप की प्राप्ति कर लेनेमें ही मानव शरीरकी चरितार्थता है। जो मनुष्य ऐसी उत्तम सुविधा प्राप्त करके भी पशुके समान केवल विषय-भोगमें

ही जीवनका उपयोग करता है, उसके जन्मको धिक्कार है, क्योंकि जो बुद्धि प्रभुने उसे नरसे नारायण बननेके लिए दी थी, उसका उपयोग उसने क्षुद्र विषयोंके भोगनेमें ही किया। सारांश यह कि विषयोंसे विमुख होकर ही निर्मल अन्तःकरणके द्वारा हम भगवद्भजनके सच्चे अधिकारी बन सकते हैं।

(शेष पृष्ठ ८ कालम दो का शेष)

## (भगवान महावीर और उनका उपदेश)

अविनीतको विपत्ति प्राप्त होती है और विनीतको सम्पत्ति—ये दो बातें जिसने जान ली हैं, वही शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

### चतुरङ्गीय-सूत्र

संसारमें जीवोंको इन चार श्रेष्ठ अङ्गों—  
(जीवन विकासके साधनों) की प्राप्ति बड़ी कठिन है—

मनुष्यत्व, धर्मश्रवण, श्रद्धा और संयममें पुरुषार्थ।

मनुष्य शरीर पा लेने पर भी सद्धर्मका श्रवण दुर्लभ है, जिसे सुनकर मनुष्य तप, तप्ता, अहिंसाको स्वीकार करते हैं।

सौभाग्यसे यदि कभी धर्मका श्रवण हो भी जाय तो उस पर श्रद्धा होना अत्यन्त दुर्लभ है। कारण कि बहुतसे लोग न्यायमार्गको—सत्य सिद्धान्तको—सुनकर भी उससे दूर रहते हैं—उस पर विश्वास नहीं रखते।

सद्धर्मका श्रवण और उस पर श्रद्धा—दोनों प्राप्त कर लेने पर भी उनके अनुसार पुरुषार्थ करना तो और भी कठिन है; क्योंकि संसारमें बहुतसे लोग ऐसे हैं, जो सद्धर्म पर दृढ़ विश्वास रखते हुए भी उसे आचरणमें नहीं लाते।

परन्तु जो तपस्वी मनुष्यको पाकर, सद्धर्म का श्रवण कर, उसपर श्रद्धा लाता है और तदनुसार पुरुषार्थ कर आश्रय रहित हो जाता है, वह अन्तरात्मापर की कर्म-रजको भटक देता है।

जो मनुष्य निष्कपट एवं सरल होता है, उसीकी आत्मा शुद्ध होती है, उसीके पास धर्म ठहर सकता है। धीसे सींची हुई अग्नि जिस प्रकार पूर्ण प्रकाशको पाती है, उसी प्रकार सरल शुद्ध साधकही पूर्ण निर्वाणको प्राप्त होता है।

### अप्रमाद सूत्र

जीवन असंस्कृत है—अर्थात् एक बार



टूट जानेके बाद फिर नहीं जुड़ता, अतः एक क्षणभी प्रमाद न करो। प्रमाद, हिंसा और असंयममें अमूल्य जीवन काल बिता देनेके बाद जब वृद्धावस्था आयेगी, तब तुम्हारी कौन रक्षा करेगा—तब किसकी शरण लोगे? यह खूब सोच विचार लो।

प्रमत्त पुरुष धनके द्वारा न तो इस लोक में ही अपनी रक्षा कर सकता है और न परलोकमें! फिर भी धनके असीम मोहसे मूढ़ मनुष्य दीपकके बुझ जाने पर जैसे मार्ग नहीं देख पड़ता, वैसेही न्याय मार्गको देखते हुए भी नहीं देख पाता।

संसारी मनुष्य अपने प्रिय कुटुम्बियोंके लिये बुरे-से-बुरे पाप-कर्म भी कर डालता है, पर जब उनके दुष्फल भोगनेका समय आता है, तब अकेला ही दुःख भोगता है, कोई भी बन्धु उसका दुःख बँटाने वाला—सहायता पहुँचाने वाला नहीं होता।

संयम-जीवनमें मन्दता लाने वाले काम-भोग बहुत ही लुभावने मालूम होते हैं। परन्तु संयमी पुरुष उनकी ओर अपने मनको कभी आकृष्ट न होने दें। आत्मशोधक साधकका कर्तव्य है कि वह क्रोधको दबाये, अहंकारको दूर करे। मायाका सेवन न करे और लोभको छोड़ दे।

वृक्षका पत्ता पतझड़-ऋतुकालिक रात्रि-समूहके बीच जाने पर पीला होकर गिर जाता है, वैसेही मनुष्योंका जीवनभी आयु समाप्त होने पर सहसा नष्ट हो जाता है। इस लिये क्षण-मात्र भी प्रमाद न कर।

जैसे ओसकी बूँद कुशाकी नोक पर थोड़ी देर तकही रहती है, वैसेही मनुष्योंका जीवन भी बहुत अल्प है—शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाला है। इसलिये क्षण-मात्र भी प्रमाद न कर।

अनेक प्रकारके विघ्नोंसे युक्त अत्यन्त अल्प आयु वाले इस मानव-जीवनमें पूर्व संचित कर्मोंकी धूल पूरी तरह झटक दो। इसके लिये क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

तेरा शरीर दिन-प्रतिदिन जीर्ण होता जा रहा है, सिरके बाल पककर श्वेत होने लगे हैं, अधिक क्या—शारीरिक और मानसिक सभी प्रकारका बल घटता जा रहा है, अतः क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।

जैसे कमल शरत्कालके निर्मल जलको भी नहीं छूता—अलग अलिप्त रहता है, उसी प्रकार तू भी संसारसे अपनी समस्त आस-क्तियाँ दूर कर सब प्रकारके स्नेह-बन्धनसे रहित हो जा।

“परमानन्द संदेश” के सदस्य बनकर ज्ञान यज्ञ में अपना सहयोग देने की कृपा करें।



# जीवन पहेली

लेखक—श्री स्वामी मनोहरदास जी महाराज

०

‘जादूगर ! आज तो नदी में तैरने की इच्छा हो रही है ।’

“कोई बात नहीं, तुम यहीं इस बालुदेश को थोड़ी देर के लिए तालाब समझकर इसी में हाथ पैर मारो, तो यहीं तुम्हें पानी में तैरने का अनुभव होने लग जायगा ।” इस प्रकार जादूगर के वचन सुनकर पूर्ण विश्वास रखकर वह लड़का उस बालू को पानी समझकर हाथ पैर चलाने लगा । वहाँ उस जादूगर ने अपनी मिसमिरेजम नामक योग की एक अवांतर शक्ति से उसकी बुद्धि को अपने जलमय संकल्प से प्रभावित करनेका प्रयत्न किया ।- धीरे धीरे वह लड़का उस जादूगरके दृढ़ संकल्प से प्रभावित होकर उस बालू को पानी समझ कर तैरनेके लिए इधर उधर हाथ पैर मारने लगा । दूसरे दर्शक लोग उस खेल को देखकर हँसने लगे और वह लड़का और अधिक हाथ पाँव चलाने लगा । जब जादूगरने अपनी यौगिक शक्ति को दूर किया, तब वह लड़का अपने को बालूरेतसे भरा हुआ देखकर, जादूगरके खेलको समझकर बहुत लज्जित हुआ ।

पाठकों में से भी यदि कोई वहाँ होता, तो उस लड़के को इस प्रकार छटपटाते देखकर

अवश्य हँसता । किन्तु अब यह देखना चाहिए कि हम भी उस लड़केकी कोटि में से तो नहीं हैं ? कहीं हम मरुस्थलके मृगतृष्णाके जल को सच्चा जल समझकर उसमें तैरनेके आनन्द को लूटनेका प्रयत्न तो नहीं कर रहे हैं ? अब जरा होश में आकर देख तो लें कि जिस जल में हम अब तक अनादि कालसे तैर रहे हैं, उससे हमारा शरीर शीतल होकर शान्तिको प्राप्त हुआ है कि नहीं ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि और छटपटा करके अपने हाथ पैर ही फुला लिए हों ।

मालूम तो ऐसा ही होता है कि यह मानव भी किसी जादूगरकी माया (अविद्या) में ही फँस गया है । सारा शरीर थका हुआ सा प्रतीत हो रहा है । उस आनन्दकी आशाकी जगह, जिसे प्राप्त करनेके लिए मानवने जागतिक पदार्थों व इन्द्रियोंमें महान-संघर्ष खड़ा कर लिया था, अब निराशा आ रही है । चेहरे की भुर्रियाँ अमार संसारकी असलियत समझा रही हैं अब यह पुरुष अपनी कमरको झुकाकर मानों छोटे बच्चोंके कान तक अपना मुख लाकर अपना अनुभव बतला रहा है कि मुझसे तो अब तक धोखा हुआ, कमसे कम तुम तो



सँभल जाओ 'क्या अब इस सज्जजसे भरे हुए संसारको छोड़ना पड़ेगा ?' इस प्रकारकी चिन्ता कई बार एक वृद्ध-हृदयस्थलमें जाग्रत हो उठती है।

कभी पूर्व जीवनकी स्मृति आते ही इस प्रकार मनन शुरू हो जाता है कि "कोई जमाना था कि मुझे माता पिता गोदमें लेकर इधर-उधर घुमाते थे। बस उस आनन्दको ही अपना जीवन समझता था। गोदसे उतारते ही रोना आरम्भ हो जाता था। कुछ बड़ा हुआ तो खेलमें आनन्द आने लगा। खेलके समय गोदसे भी भाग कर खेलमें शामिल हो जाता था। कभी तो खेलते खेलते रोटी भी भूल जाता था। फिर आनन्द बढ़कर अपने साथियोंसे आगे होनेमें आने लगा। जब पता चला कि पढ़कर नौकरी से उदरपूर्ति होगी, तब तो रात दिन जल्दीसे जल्दी परीक्षा पास करना ही जीवन मान लिया। फिर व्यवहारमें आतेही स्त्री आदि भोग्य पदार्थोंका उपभोग ही जीवनका लक्ष्य बन गया। कुछ जवानीकी अकड़ आने लगी। समझता था कि अकड़ना भी जीवन ही है। अपनी थोड़ी सी अच्छाईको भी प्रकट करके गर्वसे फूला नहीं समाता था। अनुभवी मुझ पर हँसते थे, मैं उन्हें पुराने विचार वाले समझकर टाल देता था। कई ठोकरें आईं, मैं भी चलता गया। सोचा.....जल्दी से जल्दी इस मंजिलको समाप्त करके कुछ धन आदि भोग साधन इकट्ठे करके फिर आरामसे जीवन बितावेंगे, किन्तु यों हवाई किले बनाते बनाते ही वृद्ध अबस्थाने आ दर्शन दिया। बस इसने तो फिर सभी आशाओं

पर ही पानी फेर दिया, संसार स्वप्न कैसे है इसका साक्षात् चित्र सामने खड़ा कर दिया। सुखाभास अब अपने असली स्वरूप दुःख रूप में दर्शन देने लगे। स्त्री आज्ञामें है, तो लड़के कहना नहीं मानते। लड़के आज्ञाकारी हैं, तो इन्द्रियोंने जवाब दे दिया। सोचा था इन्द्रिय शिथिल हो जायेंगी, तो भोगेच्छा भी साथ ही समाप्त हो जायगी। किन्तु उल्टा ही होता जा रहा है। इन्द्रिय निर्वल तो इच्छायें सबल होती जा रही हैं। यह धोखा केवल मेरेसे ही नहीं हुआ है, यह तो सभीके साथ समान ही है। अन्त में इस संसारको निराशाकी निगाहोंसे देखना ही पड़ता है। इस प्रकार हृदयमें तूफानको लेते हुए यह वृद्ध मानव संसारकी असलियतका नकशा समझ रहा है। मालूम होता है कि बालूको पानी समझकर तैरा गया है। इस असारको सार समझकर रचा गया है। इस स्वप्नको सत्य मानकर सजाया गया है। किन्तु अन्तमें मृग तृष्णा जलकी ओर दौड़कर थके हुए मृगकी तरह इस संसारकी तरफ आश्चर्य की नजरसे देखते हुए पुरुषको देखकर दर्शक रूपी शास्त्र हँसता है। फिर कृपा करके उसे असली जलका मार्ग बतलाता है—

“जो तू ढूँढ़े आपको, सौ तू आपै आप।  
आप भुलानो आप तैं, बँधो आप तैं आप॥”

अर्थात् जिस परम शान्तिको तुम खोज रहे हो वह परम शान्ति आनन्द स्वरूप तो तुम्हारा असली स्वरूप है। जरा वृत्तिको अन्त-मुख करके अपने दर्शन करके देख लो। ज्यों-



ज्यों यह वृत्ति इस असार संसारसे हटकर अन्तर्मुखी होती जायगी, त्यों त्यों आनन्दका अनुभव बढ़ता जायगा। तुम अपने असली स्वरूपको भूलकर ही इस स्वप्न सदृश मिथ्या बन्धनमें वृथा अपनेको बँधा हुआ समझ रहा है। जब इस स्वप्नको स्वप्न समझने लग जाओगे, तब तुम्हारी यह वेदना आनन्द रूपमें परिणित हो जायगी। अपने शोक पर हँसोगे।

क्या तुम्हारी इतनी लम्बी बीती हुई जिन्दगी एक स्वप्नकी तरह प्रतीत नहीं होती? यदि बीता हुआ जीवन एक स्वप्नकी तरह मालूम होता है, तो फिर इस बातको भूलकर दुखी क्यों हो रहे हो? स्वप्नकी वृद्धावस्था है क्या?

स्वप्नके दुख वास्तवमें दुःख हैं क्या? यह तो सब प्रारब्धका खड़ा किया हुआ खेल है। जब प्राग्बध समाप्त हो जायगा, तो यह खेल भी समाप्त हो जायगा। फिर खेलमें दुःख काहे का? अपने असली स्वरूपको भूलकर इस स्थूल शरीरको ही अपना स्वरूप मानकर इनके द्वारा किए हुए कर्मोंका अपनेमें आरोप कर,

इन कर्मोंकी वासनाओंको बनाये रखनेसे तुम्हीं ने ही तो इन प्रारब्ध कर्मोंको खड़ा किया है। अब यदि अपने वास्तविक स्वरूपको समझकर इन दोनों शरीरोंमें से अभिमानको हटाकर वासनाओंको निर्मूल कर लोगे, तो आगेकी प्रारब्धकी प्रक्रिया समाप्त होकर यह स्वप्न यहीं समाप्त हो जायगा। अर्थात् जन्म मरणके चक्कर की निवृत्ति होकर अपने असली स्वरूप परमानन्द ब्रह्म रूपसे ही अवस्थिति हो जायगी। वस यही मनुष्य जीवनका परम पुरुषार्थ है। इसे प्राप्त करनेके बाद “न स पुनरावर्तते” (छा० ८-१५-२) इस श्रुतिके कथनानुसार फिर उसका जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधिका चक्र सदाके लिए ही समाप्त हो जायगा। यदि इस प्रकार संसारकी असलियतको समझकर अपने वास्तविक स्वरूप ब्रह्मको पहिचान जाय तो जीवनकी पहिली ही हल हो जाय। फिर इस जीवनको आश्चर्यकी निगाहोंसे न देखकर खेल समझकर द्रष्टाकी तरह जीवन-मुक्तिका आनन्द लुटते हुए प्रारब्ध समाप्त होने पर विदेह मुक्त हो जाय।

— — —

---

यदि तुम धनवान और गुणवान हो तो दूसरों को धनी और गुणी बनाओ। यदि तुम विद्वान हो तो दूसरों को विद्वान बनाओ। तुम्हारा धन, गुण और विद्या सदा सुशोभित बनेगी।

---



# ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या

लेखक—श्री समुभावन प्रसादजी

०

जिसके आदि और अन्तमें जो है वही बीचमें भी है और वही सत्य हैं। विकार तो केवल व्यवहारके लिये की हुई कल्पना मात्र है। जैसे कंगन-कुन्डल आदि सोनेके विकार और घड़े-सकोरे आदि मिट्टीके विकार पहले सोना या मिट्टी ही थे। बादमें भी सोना या मिट्टी ही रहेंगे। अतः बीचमें भी वे सोना या मिट्टी ही हैं। जगतका आदि, अन्त और मध्य ब्रह्म ही सत्य है।

आत्मा जन्म, सत्ता, वृद्धि, विपरिणाम, अपक्षय और विनाश रूपी षट् विकारसे रहित है। एकही आत्मा निवृत्ति रहित है इसलिये सत् कहलाता है, जड़से विलक्षण प्रकाश स्वरूप है इसलिये चित् कहलाता है और दुःखसे विलक्षण मुख्य प्रीतिका विषय है इसलिये आनन्द कहलाता है। सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा है और सच्चिदानन्द स्वरूप ही शास्त्रमें ब्रह्म कहा गया है। ब्रह्म नाम व्यापक का है। देशसे जिसका अन्त न हो वह व्यापक कहलाता है उससे आत्मा यदि भिन्न हो तो देशसे अन्त वाला होगा और जिसका देशसे अन्त होता है उसका कालसे भी अन्त होता है, यह नियम

है। इसलिये अनित्य होगा। जिसका कालसे अन्त हो वह अनित्य है। इसलिये ब्रह्मसे भिन्न आत्मा नहीं है और आत्मासे भिन्न यदि ब्रह्म हो तो अनात्मा होगा और वह जड़ होगा इस लिये ब्रह्म स्वरूप ही आत्मा है।

एकही चेतन सर्व प्रपञ्च और माया अधिष्ठान है इसलिये ब्रह्म कहलाता है। अविद्या और व्यष्टिदेहका अधिष्ठान है इसलिये आत्मा कहलाता है। तत्त्वमसि महावाक्यमें तत्पदका लक्ष्य ब्रह्म कहलाता है, त्वम्पदका लक्ष्य आत्मा कहलाता है। ईश्वर साक्षी तत्पदका लक्ष्य है और जीव साक्षी त्वम्पदका लक्ष्य है। व्यष्टि संघात उपहित चेतन जीव साक्षी है और समष्टि संघात उपहित चेतन ईश्वर साक्षी है। मठमें स्थित घटाकाश और मठाकाशमें कोई भेद नहीं है। जीव और ईश्वरमें उपाधि का भेद है।

परलोकवादी आस्तिक भी आत्माको नित्य ही मानते हैं। उनकी मान्यता है कि आत्माका जन्म अंगीकार करने पर अनित्य होगा। कर्त्ता भोक्ता मान लेने पर भी आत्मा जन्म-नाश रहित है। किसी हेतुसे ही जन्म



होता है। आत्माका हेतु आत्मासे भिन्न ही होगा और आत्मासे भिन्न सम्पूर्ण आत्मा में कल्पित है। इसलिए आत्माका हेतु नहीं बनता। जैसे रज्जुमें कल्पित सर्प रज्जुका हेतु नहीं उसी प्रकार आत्मामें कल्पित वस्तु आत्मा का हेतु नहीं। क्यों कि यह नियम है कि जो आत्मासे भिन्न हो वह अनित्य होता है। अनित्य वस्तु जड़ होती है।

जिस वस्तुका ज्ञानसे अभाव हो उसे असत् कहते हैं तथा जिसकी निवृत्ति किसी कालमें नहीं होती उसे सत् कहते हैं। सभी पदार्थों और उनकी निवृत्तिका अधिष्ठान आत्मा है। यदि आत्माकी निवृत्ति हो तो उसका और अधिष्ठान कहना चाहिए क्यों कि सून्यमें निवृत्ति नहीं होती। यदि आत्मा और उसकी निवृत्तिका अन्य अधिष्ठान अंगीकार करें तो उसका और अधिष्ठान अंगीकार करना होगा। इस रीतिसे अनवस्था होगी। इसलिये सबका अधिष्ठान आत्मा ही सिद्ध होता है और वहीं सत्य है। वेदान्तमें कहा गया है कि रागद्वेष, धर्म अधर्म, सुख-दुःख बन्ध और मोक्षसे रहित एक व्यापक आत्मा है आत्मा ही सत् है। ज्ञान आत्माका गुण नहीं है अपितु आत्म स्वरूप ही ज्ञान है। ज्ञान नित्य है अनित्य नहीं। गुण आगमापायी होता है। वस्त्रका नीला पीत गुण कभी रहता है कभी नहीं रहता। गुण गुणवानमें सदा नहीं रहता उत्पत्ति और विनाश अन्तःकरणकी वृत्तिके होते हैं ज्ञानके नहीं। इसीलिये सत्

आत्मा ज्ञान स्वरूप या प्रकाश स्वरूप सिद्ध होता है। आत्मा आनन्द स्वरूप है, यदि आत्मा आनन्द स्वरूप न होता तो विषय सम्बन्ध से स्वरूप आनन्दका भान नहीं होता। अतः यह सिद्ध है कि विषयमें आनन्द नहीं है। यदि विषयमें आनन्द होता तो जिस विषयसे एक पुरुषको सुख होता है उसीसे दूसरेको दुःख होता है। ऐसा नहीं होना चाहिए। यदि विषयमें आनन्द होता तो एक विषयसे तृप्त पुरुष जब दूसरे विषयकी इच्छा करता है तब भी प्रथम विषयसे आनन्द होना चाहिए परन्तु ऐसा नहीं होता। शास्त्रमें सत्ताके दो प्रकार बतलाये गये हैं—१ चेतनकी परमार्थ सत्ता २—जड़की अपरमार्थ सत्ता दूसरे शब्दोंमें आत्माकी परमार्थ सत्ता और अनात्माकी प्रतिभास सत्ता है। स्थूल दृष्टिसे सत्ताके तीन भेद बतलाये गये हैं अर्थात् पहली चेतनकी परमार्थ सत्ता और दूसरी जड़की अपरमार्थ सत्ता के भी दो भेद बतलाये गये हैं। जाग्रतके पदार्थ व्यवहारिक कहे गये हैं और स्वप्नके पदार्थ प्रतिभासित बतलाये गये हैं। जाग्रतके पदार्थों की भाँति स्वप्नके पदार्थोंमें भी कार्य-कारण भाव प्रतीत होता है। जैसे कोई मनुष्य स्वप्न देखे कि मेरी गायके बत्स हुआ है, मेरी स्त्रीके पुत्र हुआ है। वहाँ गाय और स्त्रीमें कारणता की प्रतीति और बहुकाल स्थायित्वकी प्रतीति होती है। बत्स और पुत्रमें कार्यता और अल्प-काल स्थिरताकी प्रतीति है। और सारे सम काल हैं। कोई किसीका कारण नहीं किन्तु गाय, स्त्री आदिका अविद्या ही उपादान है।



ऐसा ही जाग्रतमें भी होता है। स्वप्नकी भाँति जाग्रत भी मिथ्या है। स्वप्नके पदार्थोंका जाग्रतमें अभाव है तथा जाग्रतके पदार्थोंका स्वप्नमें अभाव है। दोनों सम हैं। जाग्रतके पदार्थ ज्ञानके साथ ही होते हैं, इसलिये दूसरी जाग्रतमें नहीं रहते। स्वप्नके पदार्थोंसे जाग्रत के पदार्थ विलक्षण सिद्ध नहीं हो सकते। सारे पदार्थ सत् परमात्मासे उत्पन्न हुये हैं इसलिए उसके विवर्त हैं। जो जिसका विवर्त होता है वह उसीका स्वरूप होता है। इसलिए सारा नाम रूप ब्रह्मसे पृथक् नहीं, ब्रह्म ही है। सारे पदार्थ साक्षात् अविद्याके कार्य हैं। श्रुति-रजतकी भाँति या स्वप्नकी भाँति अविद्याकी वृत्ति उपहित साक्षीसे उनका प्रकाश होता है। अद्वैतका बोध करानेके लिए ही श्रुतिमें सृष्टि का वर्णन किया गया है। सृष्टिमें क्रम नहीं है। किन्तु सारे पदार्थ एक अविद्यासे उपजे हैं। उनमें परस्पर कार्य कारण भाव और पूर्व उत्तर भाव नहीं है। क्रमका कथन लयचिन्तन के निमित्त है। लयचिन्तन से भी अद्वैत बोध होता है।

यह कहना भी उचित नहीं कि स्वप्नका ज्ञान स्मृति रूप है क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञानके दो प्रकार हैं—अभिज्ञा प्रत्यक्ष तथा प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष। केवल इन्द्रिय सम्बन्धसे जो ज्ञान होता है वह अभिज्ञा प्रत्यक्ष कहलाता है तथा पूर्वज्ञानके संस्कारसे और इन्द्रिय सम्बन्धसे होने वाला ज्ञान प्रत्यभिज्ञा-प्रत्यक्ष है। स्मृति और प्रत्यभिज्ञा प्रत्यक्ष दोनों संस्कार जन्य होते हैं। केवल संस्कार जन्य ज्ञान इन्द्रिय सम्बन्ध बिना

स्मृति ज्ञान कहलाता है। स्वप्नका ज्ञान निद्रा रूपदोष जन्य है और स्वप्नमें कल्पित इन्द्रियाँ भी होती हैं। अब यह सिद्ध हो गया कि स्वप्न की भाँति जाग्रत भी मिथ्या है। शास्त्रमें जगत की उत्पत्ति अनेक प्रकारसे कही गयी है। छान्दोग्य उपनिषद्में बताया गया है कि सत् परमात्मासे तेज, तेजसे जल और जलसे पृथ्वी उपजे हैं और तैत्तिरीय उपनिषद्में आकाश, वायु, अग्नि जल और पृथ्वीके क्रम से सृष्टि बताई गयी है। कहीं परमेस्वर सबकी उत्पत्ति करता है। इस प्रकार बिना क्रमके ही सृष्टि का वर्णन मिलता है। प्रपंचकी उत्पत्ति एक रूपसे न कहनेका अभिप्राय यह है कि शास्त्र प्रपंचका निषेध करता है। जगत मिथ्या है। अद्वैत ज्ञानके निमित्त ऐसा वर्णन है। जगत का उपादान और निमित्त कारण एकमात्र ईश्वर है।

नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म ( श्रुति ) नेह नानास्ति किञ्चन ( श्रुति ) सर्वं खल्विदं ब्रह्म। (श्रुति) इत्यादि वाक्य ब्रह्मको सत्य और जगत को मिथ्या सिद्ध कर रहे हैं। इन वाक्यों के क्रमसे अर्थ है—असत्का भाव नहीं है और सत्का अभाव नहीं है अर्थात् अनात्माकी सत्ता नहीं है और आत्माकी अविद्यमानता नहीं है। ब्रह्म सत्य स्वरूप, ज्ञानस्वरूप तथा अनन्त स्वरूप है। इस जगतमें केवल परमात्मा ही परिपूर्ण है, यहाँ परमात्मासे भिन्न कुछ भी नहीं है। यह सब जगत ब्रह्म है।

( शेष आगामी अंक में )



## श्रीतीर्थ रामटेकड़ी पर गुरुपूजा

प्रतिवर्षकी भाँति श्रीतीर्थरामटेकड़ी पूना उदासीन गढ़में गुरु पूजन महोत्सव धूमधामके साथ सोल्लास मनाया गया। प्रातःकाल मंगल-ध्वनिके साथ ही देवार्चन पूजनका कार्य प्रारम्भ हो गया। नेमी-प्रेमी शिष्य सेवकों की भीड़ जुटने लगी। शिष्य, सन्त, महात्मा जनों ने प्रथम गुफा मन्दिर में श्री गुरुचरणों की वन्दना और पूजन कर चरणामृत ग्रहण किया। तत्पश्चात् गुरुमहाराज की भव्य प्रतिमा रथमें सजाकर बैड बाजा और कीर्तन की धुन के साथ भक्तों ने रामटेकड़ी की परिक्रमा करते हुए शोभा यात्रा निकाली। १२। बजे दिन में यज्ञ, हवन और पाठ की पुर्णहृति का कार्य सुसम्पन्न हुआ। पुर्णहृति के बाद सद्गुरुदेव गुफासे सत्सङ्ग भवनके भव्य सिंहासन पर विराजमान हुए। मंगल वाद्य, नामध्वनि, जयजकार, पुष्पवृष्टि से श्रद्धालु भक्तों ने

महाराज जीका स्वागत किया। तत्पश्चात् शिष्य सेवकों द्वारा गुरुपूजन प्रारम्भ हुआ। यह कार्यक्रम घंटों चलता रहा। शिष्योंकी पंक्ति लगी रही। रक्षक दल सुव्यवस्था और सुरक्षाके लिये अथक प्रयास कर रहे थे। कीर्तन भजनका कार्यक्रम भी सफल और आकर्षक रहा। श्रीनारायणराव बोगम, श्रीगायनाचार्य भूमानन्दका गायन और संगीत मनोमुग्धकारी रहा। श्रीमूलचन्द्रजी, श्रीहजारी लालजी तथा सीतारामजी आदि अनेक प्रेमियों ने अपनी भजन और कविता सुनाकर श्रोताओं को मोहित कर लिया। अन्तमें गुरुमहाराजकी अमृत-त्राणीका पान और आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद भण्डाराका कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। जो सायंकाल तक चलता रहा। परमानन्द भय सुख शान्तिमें श्रोत-प्रोत भक्तोंका यह पवित्र आयोजन रात्रिके पूर्व ही समाप्त हुआ।

### ❀ गुरुपूजा के अवसर पर एक गुरुभक्त का उद्गार ❀

हजारीलाल लालचन्द सलुजे

मेरे बाबाजी की है लीला निराली, नहीं कोई जाता है इस दरसे खाली ॥ टेक ॥  
जो चरणोंमें आये वो सुख चैन पाये, जरा बन करके कोई देखे सवाली ॥ टेक ॥  
सहारे पे बाबा के जो कूद जाये, तो तूफानों में भी न वो डगमगाये,  
बाबाने है उसकी नैया सम्हाली ॥ टेक ॥  
कामकी होली जलाते हैं बाबा, निष्काम बनना सिखाते हैं बाबा,  
चमकता है सूरज भगे रात काली ॥ टेक ॥  
यह दरवार वो है यह सरकार वो है, सभी सेवकों को बड़ा इसका मो है,  
ये पीते पिलाते ज्ञानामृतकी प्याली ॥ टेक ॥  
“हजारी लाल” यहाँ पर हैं आते, गमी को भुलाते खुशी लेके जाते,  
उतरती है मैल और चढ़ती है लाली ॥ टेक ॥

श्री अजित मेहता तथा श्री भद्रसेन वैद्य की ओर से कल्पना प्रेस वाराणसी में भद्रसेन वैद्य द्वारा मुद्रित प्रकाशित सम्पादित।







परमानन्द संदेश  
वर्ष ३ अंक १०

रजिस्टर्ड संख्या  
ए० १५५७

अगस्त १९६३  
श्रावणा २०२०

“परमानन्द संदेश” का आगामी विशेषांक

सन्तनारायण का अद्भुत, अलौकिक मौलिक ग्रन्थ

निर्गुण रामायणाङ्क

( राम रावण परम तत्व विचार )

बीसवीं सदी के सन्त शिरोमणि सद्गुरु बाबा शारदा राम जी रचित यह अनमोल हिततम ग्रन्थ प्रथम बार व्याख्या सहित सचित्र अनोखी सज-धज के साथ आगामी कार्तिक मास में प्रकाशित हो रहा है।

कागज के अभाव तथा आर्थिक संकट के कारण थोड़ी ही प्रतियां छप रही हैं। अपने सदस्यों को देने के बाद ही हम अन्य को दे सकेंगे। अतः आप आज ही “परमानन्द संदेश” वर्ष ४ के लिये अग्रिम सदस्य बन कर अपनी प्रति सुरक्षित करा लें।

डाक व्यय सहित वार्षिक चन्दा ५-५० न० पै० मनीआर्डर द्वारा कार्यालय के पते पर भेजने की कृपा करें।

पता—

शारदा प्रतिष्ठान,

सी० के० १५।५१ सुडिया, बुलानाला, वाराणसी।